एक सत्य हरिश्चन्द्र

डा0 लक्ष्मीनारायण लाल

पूर्व रंग

शुभ प्रस्तावना के रूप में, मैकेबेथ जैसी महान नाट्यवस्तु और गंभीर रंग कार्य में दो सच्चाईयॉ मानी गई हैं – तभी वह शेक्सपियर का मैकेबेथ हुआ है । मैकेबेथ, नायकत्व की गरिमा से गिरने से पूर्व ...

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के विशेष संदर्भ में वे दो सच्चाइयॉ इस तरह हैं । एक वरिष्ठ नाटककार और एक युवा निर्देशक का एक जगह का पहुॅचना ।

पहुॅचने का मतलब आना । उसे करना । अपनी पहल से आगे आ जाना । निश्चय ही 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना कर, यात्रा नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल ने की । पर उनके साथ इस नाटक के युवा निर्देशक एम0 के0 रैना भी पहुॅचे । एक की यात्रा लम्बी थी । दूसरे ने जल्दी की ।

नाट्यरचना की यात्रा, उसकी मंजिलों और हकीकतों को ध्यान में रखते हुए हमें निःसंकोच कहना है कि लाल का यह नाटक उनकी एक ऐसी उपलब्धि है, जिस पर 'मेजर' विशिष्ट रचना की मुहर लगती है ।

दूसरी सच्चाई यह कि नाटककार लाल की नाट्यानुभूति और रंगमंच को अभिनेता–निर्देशक रैना ने समान रूप से मंच पर अनुभूत किया ।

एक–दूसरे के बिना यह रंगयात्रा सुगम न होती और वह 'पहुंचना' संकोचपूर्ण होता ।

अब तक, इससे पूर्व लाल अपने 'मिस्टर अभिमन्यु', 'सूर्यमुख', 'करफ्यू' और 'व्यक्तिगत' नाटकों में व्यक्ति की आत्मा और उसके जीवन के संकट को, आधुनिक समाज में मानवीय संबंधों को, मनुष्य और मिथक के परिवेश में देखते तलाशते रहे । 'अब्दुल्ला दीवाना' में मानव न्याय और उसकी वर्तमान नियति को परखते रहे ।

इन नाट्यकृतियों में एक सजग कलाकार के रूप में लाल अपनी सर्जनात्मक सजगता का उसी तरह परिचय देते रहे हैं जैसे कि अनेक और ।

इसी तरह नेशनल स्कूल आफ ड्रामा से उत्तीर्ण होकर रैना ने अनेक प्रस्तुतीकरणों में, जिनमें उल्लेखनीय है – ब्रेख्त, गोर्की और सिज के नाटक, अपने व्यक्तित्व का परिचय दिया ।

पर यह आश्चर्य की बात है कि नेशनल स्कूल आफ ड्रामा की ओर से उनकी प्रस्तुतीकरण के लिए लाल का यह नाटक पाकर रैना का वह निर्देशक–अभिनेता रूप कैसे संयमित रह सका ! अपनी भावनाओं के ऊपर उनका आत्म अनुशासन कैसे बना रहा !

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' – पूर्णतः मौलिक, अपनी मिटट्ी से, अपनी नाट्यपरंपरा और रंग–संस्कारों से उपजा हुआ एक अप्रितम नाटक, जो आधुनिक तो है ही, पर साथ ही कालजयी और विशिष्ट है । रैना ने इसे पहचाना, समझा और इसे उसी प्रौढ़ता और गहराई से प्रस्तुत किया – जो इसका अपना धरातल था । इसके अपने नाट्य आयाम थे ।

रंगशैली और नाट्यवस्तु, रूपबंध और कथ्य का ऐसा अपूर्व संयोग पहली बार हुआ । साथ ही तथाकथित आधुनिकता – जिसकी लोग तमाम बातें करते रहे हैं, डीगें हांकते हैं, जो पश्चिमी रंगमंच के अपने कुछ नये आविष्कार हैं, बल्कि चमत्कार हैं उसको लाल ने त्यागकर अपने आधुनिक को प्राप्त किया है ।

इस नाटक में लाल का नाट्य–स्वरूप, रंगशिल्प, शुद्ध रूप से शास्त्रीय भारतीय नाट्य की समझ और पहचान से उद्भूत है । वह पहचान और समझ, जो बताती है कि शास्त्रीय परम्परा में ही चिरंतन आधुनिकता है ।

इसी गहरी समझ के कारण, सत्य हरिश्चन्द्र की जिस कथावस्तु और नाट्य–सामग्री को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने केवल पारम्परिक रूप में लिया, लाल ने उसे इतना गहन आधुनिक संदर्भ और अर्थ दिया ।

इस नाटक के रूपबंध का आधार संस्कृत नाटकों का है । संस्कृत नाटक की बुनियादी बातें, वे बुनियादी तत्व जिन्हें आज कलात्मक रूप से हृदयंगम करना कठिन हो गया, इसके नाट्य–स्वरूप में परिव्याप्त है । स्पष्ट और गहरे ढंग से उसका प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए संस्कृत नाट्य का बुनियादी तत्व है गोलाई, वृत्ताकार में चालन । कहना, बार–बार कुछ कहना । और फिर वही कार्य में अभिनीत करना । एक परिधि में, संगीत के एक राग में वृत्ताकार घूमना, संस्कृत नाट्य के इस आधार को लाल ने ज्यों का त्यों, बिना कुछ तोड़े–मरोड़े (मतलब प्रयोग किए) अपने 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' के नाट्य में परम सृजनात्मक ढंग से प्रयुक्त किया है । स्थान, देश, काल के परिवर्तन दिखाने, कथा और कार्य का आरोह प्रस्तुत करने, दृश्य उपस्थित करने के लिए जो रंगशैली संस्कृत नाट्य में है, वही यहां है । फिर भी इसमें अपनी आधुनिक गीत है । अपने समय, देशकाल का जीवन वेग है । यही इस नाटक को 'मेजर', विशिष्ट बनाती है ।

पश्चिम के शास्त्रीय और भारत के प्राचीन शास्त्रीय में कहीं कुछ भी समानता नहीं । दूर–दूर तक कोई एक भी साम्य नहीं ।

इस नाटक में लोगों के गायन का, ग्रीक थियेटर के 'कोरस' से कहीं कोई संबंध नहीं । इस नाटक के भीतर नाटक का उस एलिजाबीथन नाट्य से कोई साम्य नहीं । इस नाटक का अदृश्य सूत्रधार दृश्य रंगा, दृश्य लौका जो इसके पूरे विशाल रंगमंच का प्रस्तुतकर्त्ता है, विचार और संकल्पकर्त्ता है, वह सब कुछ इसका अपना है। इसकी अपनी रचना है ।

इसका नाट्य जितना ही प्राचीन है, वही इसका अपना आधुनिक है । शुद्ध संस्कृत नाट्य के समान इस नाटक का जीवन यथार्थ अपने नाट्य के साथ विकसित हुआ है, यथार्थ से सत्य की ओर बढ़ता है – पूरी भौतिकता से अध्यात्म की ओर जाता है । और फिर अपने भौतिक धरातल और जीवन यथार्थ के सम पर लौट आता है । यह प्रत्यावर्तन, आवर्तन बार–बार होता है ।

लाल अपने इस नाटक में उस शास्त्रीय नाट्यसिद्धान्त का उपयोग बड़ी विनम्रता और खूबसूरती के साथ करते हैं । सत्यनारायण की कथा कहने के लिए वह अपने नायक लौका द्वारा सत्य हरिश्चन्द्र की नौटंकी कराते हैं । इस कथा–अभिनय को प्रस्तुत करने वाले लोग हैं वे, जो सदियों से धर्म, जात–पांत, नीच–ऊंच की बलिवेदी पर शक्तिशाली लोगों द्वारा शोषित, दंडित और अनुशासित रहे हैं । इस प्रतारणा, शोषण और दंड का माध्यम कभी धर्म रहा है, कभी राजनीति । आज उस शोषण और प्रतारण का स्वरूप संपूर्ण है – क्योंकि इसमें अब धर्म का भय और राजनीति की हिंसा दोनों का समयोग है । सत्ता और प्रजा, राजनीति और लोक दोनों का सीधा साक्षात्कार हमारी आंखों के सामने यहां प्रस्तुत होता है । हमें हमारी ही कथा, हमारा ही 'काय' नाट्य बनाकर दिखाया जाता है । लौका दिखाता है । हमने उसे इस तरह कभी नहीं देखा था । वह था । न जाने कब से था । पर देखने को हमें यहां मिला। लाल ने हमें दिखाया, केवल यह बात नहीं, हमने खुद अपनी आंखों से देखा । जितना जो कुछ जीवन में जिया जा सका है, वही है सत्य हरिश्चन्द्र । इस दर्दनाक नाटक को खेलनेवाले वही लोग हैं जिन्होंने पहले राजा के अंधविश्वासी धर्म का और आज सत्ताधारी सर्वण राजनीति के भय, आतंक और हिंसा को भोगा है और अब तक भोगते जा रहे हैं । पर देवधर बाबू को क्या पता था कि उन्होंने जिस नाटक को संरक्षण दिया था, वही उलटकर उनपर वज्र की तरह टूट पड़ेगा । वह स्वयं जिस नाटक में इन्द्र का अभिनय कर रहे हैं, वह सारा धर्मप्रतीक, पौराणिक घटना उन्हींपर इस तरह घटित हो जाएगी । उन्हें भला क्या पता था ! सो ऐसा लौका को ही क्या पता था ! उसने तो नाटक में हरिश्चन्द्र राजा बनकर यह अनुभूत किया पहली बार कि क्या है हरिश्चन्द्र का सत्य ! केवल अपने सत की परीक्षा देने में सदा चांडाल के हाथों बिकते जाना ! ...

लौका हरिश्चन्द्र के रूप में (नाटक में नाटक नहीं) नाटक द्वारा विश्वामित्र से कहता है कि वह राजा ही कैसा जो सिंहासन से चिपका हो । वह कैसा मनुष्य जो देकर देना नहीं जानता । विश्वामित्र यह सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं । क्योंकि वह तो आये थे सत्य की परीक्षा लेने के बहाने हरिश्चन्द्र को इन्द्र के सामने से हटा देने के लिए । पर यहां तो विश्वास और निष्ठा ही इतनी गहरी है । विश्वामित्र इसपर तर्क करते हैं । रोहित उनसे तर्क में उत्तेजित होने लगता है । इसपर हरिश्चन्द्र कहता है – तर्क मत करो !

क्यों ?

मैं तर्क नहीं करूंगा ।

क्यों ?

सत्य तर्क नहीं है ।

यह लाल के नाटक के दर्शन का चरमबिन्दु है । 'अतृप्त वासनाओं का नाम मन है । यही मन दुख की सृष्टि करता है ।' यही मन तर्क करता है ।

यह सम्पूर्ण नाटक अपनी कला और विषयवस्तु के ही धरातल पर केवल एक विजयश्री नहीं है, वरन् अपने विचार और दर्शन के आयाम पर भी अप्रतिम है ।

– पाल जेकब
'लिंक से साभार'

23 नवम्बर, 1975

'एक सत्य हरिश्चन्द्र ।' का पहला प्रस्तुतीकरण नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, नई दिल्ली, द्वारा 15 नवम्बर, 1975 को रवीन्द्र भवन के खुले मंच पर एम0 के0 रैना के निर्देशन में हुआ ।

भूमिका में

लौका, हरिश्चन्द्र	:	पंकज कपूर
देवधर, इन्द्र	:	एम0 के0 रैना
पद्मा, शैव्या	:	अतिया बख्त
जीतन, विश्वामित्र	:	रमेश मनचन्दा
रोहित	:	एम0 एम0 इस्लाम
गपोले, नारद	:	विजय कवीश
रंगा	:	रघुवीर यादव
लोग (प्रजा)	:	वी0 राजदान, एस0 रघुवंशी,
स्त्री–पुरूष)		एम0 एम0 मोहसिंन, जी0 पी0 नामदेव, किरन बोखारी, जमील अहमद, सी0 एस0 रैना, सतीश कौशिक, एस0 एम0 इस्लाम, नैला आजाद, राजकिरन कौल, नरपिन्दर कौल, तारामती राम किशन, आशा देवी, मृदुल कौशेय, सुमन तिवारी, मधुमालती मेहता, अतिया बख्त, अनिला सिंह, अनिता कंवर
ऊंची जाति के लोग	:	सुशील बनर्जी, दोल गोविन्द रथ, विजय कश्यप, दिलीप शाह, धीरेन्द्र कुमार
पंच	:	यस0 वी0 जोसालकर, अनंग देसाई, अनुपम खेर
अंगरक्षक	:	महावीर चौधरी, रमन सेगल
पतुरिया	:	मधुमालती मेहता
फूलवाली	:	आशा देवी
नारंगीवाली	:	सुमन तिवारी
पटहार	:	रघुवीर यादव
छैला	:	वी0 राजदान
भांगवाला	:	एस0 रघुवंशी
गुंडा	:	यूसुफ मेहता
पुरोहित	:	आर0 एस0 बुंदेला
चरवाहा	:	तीरथ शेरचंद
कुटनी	:	अनिला सिंह
डोम	:	एस0 एम0 मोहसिन

श्रेय

संगीत	:	मोहनी उपरेती
मंच–कल्पना	:	एम0 के0 रैना
प्रकाश	:	गुरूचरन सिंह, यस0 वी0 जोसालकर, दलगोविन्द रथ, राजू बरोत
वस्त्र–विन्यास	:	अमाल अलाना
सहायक	:	विजय कश्यप
मेकअप	:	इन्दु घोष

चरित्र

लौका, हरिश्चन्द्र
देवधर, इन्द्र
मिस पद्मा, शैव्या
जीतन, विश्वामित्र
रोहित
गपोले, नारद
रंगा
पतुरिया
डोम
प्रजा
सिपाही
चरवाहा
पुरोहित, ब्राह्मण
हरिजन शूद्र
बनारस के लोग, आदि

प्रस्तावना

(मंच पर गांव का एक दृश्य । बायीं ओर हरिजनों का कच्चा कुआं है । दायीं ओर पीछे सवर्णों का कुआं। इस कुएं पर पुरोहित अपनी पूजा की तैयारी में लगा है । जैसे स्नान के बाद कुछ मंत्रपाठ कर रहा है । कुछ क्षणों के बाद घुमंतू – एक गरीब टूटा हुआ चमार उधर पीछे से आता है । कुएं पर रूकता है । पुरोहित कुएं से जल भरा लौटा निकालता है । प्यासा घुमंतू पानी मांगता है । पुरोहित उसे देखकर दुतकारता है, 'छिः शूद्र कहीं का ! कुएं पर चढ़ आया ! भागता है या ... ।' अपने ऊपर जल छिड़कता है और अपनी पूजा–सामग्री लिए हुए वहीं चबूतरे पर कथापूजा की तैयारी करता है ।

इसी समय गांव का भूतपूर्व जमींदार और आज का राजनेता देवधर दायीं ओर से आता है । चारों ओर देखकर फिर आगे बढ़ता है। उसके हावभाव से लगता है, वह बहुत परेशान और क्षुब्ध है । पुरोहित की ओर देख उसकी ओर बढ़ता है । पुरोहित झुककर प्रणाम करता है । दोनों में कुछ रहस्यमय बातें होती हैं । देवधर कुछ रूपये पुरोहित को देकर आगे निकल जाता है । हरिजन कुएं पर खड़ा लौका यह सारा दृश्य चुपचाप देखता है ।

घुमंतू, जो इस बीच थका हुआ एक किनारे बैठ गया था, उठकर गाने लगता है :

साहेब केके पांव बांधो घुंघुरू
केके पांव रेशम डोर
चलत–चलत अब रात बीती
सांचु सो कराय देव भेंट ... ।
(लौका गा पड़ता है ।)
मोरे पांव बांधो घुंघुरू
मोरे पांव रेशम डोर
चलत चलत अब रात बीती
सांचु सो कराय देव भेंट ... ।

कच्चे कुएं की ओर से गरीब स्त्री–पुरूष गाते हुए आते हैं :

का–का नाहीं भयो
का–का नाहीं कियो
मारियो फूंकियों घर जल्यो ।
जब हम पंचन रोई–रोई पूछ्यों
मालिक ई का भयो ?
तो मालिक न्याय का करें उल्टे और कुकर्म कियो
सत लुटी जोरू मुंह पै आंचर बांधि कुंअन मा डूबि मर्यो ।
अर्थी कांधे उठाय हम पंच मरघट चल्यो
बंदूक तान मालिक रस्ता रोकि के कहयो
'मेरी जमीन है'

अर्थी लै जाय बदे नाहीं बन्यो ।

(उधर चबूतरे पर पुरोहित सत्यनारायण की कथा शुरू करता है । गांव के सवर्ण लोग आकर बैठते हैं – कुछ चबूतरे के सामने और कुछ आगे दायीं ओर । गरीब लोग अपने कुएं के पास बैठे हैं । देवधर अपने साथी जीतन के साथ आते हैं)

पुरोहित : ततो लीलावती कन्या क्रोडे कृत्वासरोद है। ततः लीलावती कन्या नष्टे स्वामिनीदुःखिता । सो ऐसो भचो कि माता लीलावती के ऐसे वचन सुनकर कन्या कलावती बिना प्रसाद पाये ही पति सूं मिलन कूंम चल दी । तो फिर याको मतलब का भयो ? सत्यनारायण के प्रसाद की अवहेलना करन के कारन सत्यनारायण भगवान रूष्ट होइ गये । एवं कन्या कलावती और उसके पति को धनधान्य एवं नाव सहितम नदी मा डुबोय दियो । तदोपरांत कन्या कलावती ने अपने कूं उधर नाहीं पायो ।

देवधर : हां, तो किसने कहा, 'अब हमें देवधर बाबू की जरूरत नहीं है' ? देवधर बाबू को किसने बनाया ?

गपोले : भगवान ने बनाया ।

देवधर : नहीं, जनता ने बनाया । सबने बनाया । तभी तो जनता को जनार्दन कहा गया है ।

वृद्ध : साहेब, आप हमारे मालिक हैं, पर आपका मालिक कौन है ?

देवधर : जनता । तुम लोग ।

लौका : गुलाम भी कभी मालिक हुआ है ?

देवधर : समझ लो यह झूठा भ्रम फैला रहा है । मालिक जनता है ।

लौका : अगर जनता मालिक है, तो सुनो, अब जनता तुम्हें नहीं चाहती है ।

देवधर : फिर किसे चाहती है ?

लौका : अपने आपको चाहती है । उसे चाहती है, जो उसका हो । जिस पर उसका पूरा अधिकार हो ।

देवधर : मुझपर अधिकार नहीं है क्या ?

लौका : नहीं ।

देवधर : नहीं । तो नहीं, सुन लो कान खोलकर ।

जीतन : कहता है, मेरे सपनों के भारत में जाति या धर्म के भेदों का कोई स्थान नहीं हो सकता । यह स्वराज्य होगा – स्व, राज्य ।

देवधर : सच बात यह है कि यह मेरी जगह लेना चाहता है ? है तुझमें यह हिम्मत ? बड़ा चला है स्वप्न देखने, स्वराज्य का नाम लेने ! कान खोलकर सुनो, जो मेरी सीधी–सादी प्रजा को बहकायेगा, उसे मैं जिंदा रहने दूंगा ?

पुरोहित : हतंवा सत्यदेवन भ्रांतोइहं सत्यमायया । सत्यपूजां करिष्यामि । कन्या कलावती ने अपने पति की चरण पादुका के साथ सती होने का निश्चय किया। तब पुत्री का ऐसा निश्चय देख वह वैश्य स्त्री सहित शोकयुक्त हुआ ।

देवधर : अरे भाई मुझे समझा न, तुझे क्या चाहिए ?

गपोले : बोल भाई, बोल । पंछी को पिंजरा से खोल ।

लौका : हमारे लिए सारी चिंता आप करते हैं, यही आपकी राजनीति है, अगर हम अपनी चिंता खुद करें तो यही पंचों की जीत है ।

देवधर : तो कुएं के सारे मेंढक मिलकर आसमान के तारे तोड़ लेना चाहते हैं ?

जीतन : बाहर से कहीं कुएं से आवाज आयी होगी ।

देवधर : याद रखो, जो बाहर से आता है, वह स्वयं पर और पर्दा बन जाता है ।

लौका : ज्ञान भीतर से जागता है । वह आता नहीं, जागता है । पर्दों को तोड़ता है ।

जीतन : पता है किससे जबान लड़ा रहा है ।

पुरोहित : इतिश्री स्कंदपुराणे रेवा खंडे सत्यनारायणव्रत कथायां चतुर्थोध्याय : ।

(शंख बजाता है ।)

देवधर : तुम सबको सत्यनारायण की सौगंध है । सच–सच बताओ, मामला क्या है ।

जीतन : यह लोगों को गुमराह करना चाहता है ।

देवधर : यह मैं हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकता ।

जीतन : तू समझता क्या है ?

लौका : गरीबों की मुफलिसी कहती है ...

वृद्ध : इ कैसा सुराज है भइया, इससे तो अंग्रेजी राज अच्छा रहा ।

लौका : और यहां की अमीरी कहती है...

गपोले : कैसा बेकार का सड़ा लोक है, इसके लिए इतना किया जाता है, पर यह नमक हराम है ।

पुरोहित : सूतोवाच । आसीत्तुगंध्वजो राजा प्रजापालन तत्पर :। एकदा स वनं गत्वा हत्वा बहुविधान्पशून...

गपोले : यह क्रांति की बात करता है, और नहीं तो क्या ।

जीतन : भाई पहले अपना चेहरा तो जाकर देख ।

देवधर : क्रांति करेंगे । उसके लिए बड़ी ताकत चाहिए । पूरी व्यवस्था चाहिए । वह काम मेरी पार्टी कर सकती है । मैं कर सकता हूँ ।

लौका : पंचो, पूछो इनसे । यह हमारी ओर से अकेले क्यों क्रांति करना चाहते हैं ? हमें क्यों नहीं करने देते ?

देवधर : करो, जरूर करो । मगर याद रखो !

जीतन : पर यह काम वही कर सकता है जिसमें आत्मगौरव हो, आत्मज्ञान हो और आत्मविश्वास हो ।

वृद्ध : ई का चीज है भइया ?

जीतन : इसके लिए भीतर आग चाहिए । मैं पता लगा रहा हूँ, वह आग सिर्फ ऊंची जाति के लोगों में है । नीचे के लोगों में वह आग हजारों साल पहले कुचलकर बुझा दी गयी है । समझे ! कि और समझाऊं ?

लौका : हम समझ गए हैं, पर समझाते रहिए ।

देवधर : जीतन...

गपोले : लौका तो नीची जाति का है, क्या । लेकिन हॉ, इसके करम ऊंचे हैं । हम लोग ऊंची जाति के हैं, करम चाहे जैसा करें ? सारा सवाल पूर्व जन्म का है ।

पुरोहित : इति अंगध्वजो राजा। गोपाः कुर्वन्ति संतुष्टा भक्त्यि अथचः उस पूजा को बिलोकि के राजा अंगध्वज सत्यनारायण की पूजा के समीप नाहीं गयो । एवं नाहीं प्रणाम कियो । तत्पश्चातः राजा ने प्रसाद को भी त्याग दियो । सो राजा अनेक दुखन को प्राप्त भयो ।

देवधर : तू जानता नहीं मैं क्या हूं ? शायद तुझे मेरी ताकत का पता नहीं है ? मेरा इलाका है यह । मेरी जन्मभूमि है यह । मुझे कभी यहां अपनी ताकत दिखाने की जरूरत नहीं पड़ी । जब प्रेम से काम चल सकता है ..... । तुझे पता है राजनीति ने इंसान का कितना कल्याण किया है ? इसने आजादी दी है ।

लौका : नये गुलाम बनाने की ।

देवधर : बंद कर जबान अपनी ।

गपोले : देखता नहीं, पूजा हो रही है, क्या ।

जीतन : राजनीति एक रोशनी है । अंधेरा मिटा देती है ।

गपोले : इस बात को जरा समझाकर कहिए, यह मान जाएगा । भला मानुस है ।

जीतन : जैसे टार्च की रोशनी होती है ना...

लौका : जिसके हाथ में होती है, उसके लिए अंधेरा उजाला हो जाता है : लेकिन उससे दूर अंधकार और गहरा हो जाता है ।

पुरोहित : जो सत्यनारायण की कथा ध्यान से नहीं सुनता वह नष्ट हो जाता है । अंगध्वज राजा के सौ पुत्र और धनधान्य आदि नष्ट भयो । तब राजा बोला – हे हतभाग्य, मेरो सब कुछ सत्यनारायण ने नष्ट कियो ।

देवधर : मशीन देखी है ना ? बिजली से चलती है । राजनीति वही बिजली है । आज जो इसकी जबान इतनी चल रही है, उसी राजनीति से ।

गपोले : पर यह तो साहब, राजनीति के खिलाफ है, क्या ।

जीतन : यही इसकी राजनीति है ।

गपोले : ठीक कह रहे हैं, यह कलयुग है । जब युग बदल जाएगा तब हम भी बदल जायेंगे, क्या । पर सवाल यह है कि यह युग बदलेगा कैसे ? ... क्या ।

वृद्ध : अब सुनो गपोले पांडे की उल्टी–सीधी बतकही ।

गपोले : पंचो सतनारायण की कथा सुनो । बेसी बकर–बकर मत करो, क्या ।

देवधर : कोई मेरे सामने आकर कहे, मैं झूठा हूं, लौका सच्चा है । कोई बोलता क्यों नहीं ? कोई बताए सच क्या है ।

जीतन : सच जैसी चीज नहीं होती । जो आज सच है वही कल झूठ हो जाएगा । हर क्षण पृथ्वी घूम रही है । हर चीज यहां बदल रही है । इसकी बात की कोई कीमत है नहीं ।

गपोले : कीमत है, यही तो बात है ।

देवधर : पता लगाओ क्या है कीमत इसकी और भुगतान कर दो ।

वृद्ध : हे रे लौका, तू कुछ बोलता क्यों नहीं ? कैसी–कैसी बतकहो होय रही है ।

लौका : अरे सबको टुकुर–टुकुर देख रहा हूँ ।

देवधर : यह क्या बोलेगा ! जबान इसके मुंह में है !

लौका : हां, जबान तो आप लोगों ने छीन ली ।

देवधर : तो कह ना, क्या चाहिए तुझे ? मांग मुझसे । आ, अकेले में बात कर ले ।

लौका : अब अकेले में बात नहीं होगी ।

देवधर : कब किसने क्या मांगा, मैंने नहीं दिया ? बोलो ! बताओ ! अब बोलते क्यों नहीं? मैं सबके सामने पूछता हूं । क्या है ? कहो ।

(घुमंतू गा पड़ता है ।)

माया के मोहक बन की क्या कहूं कहानी परदेसी
भय है हंस के कह दोगे मेरी नादानी परदेसी ।
इस उपवन की पगडंडी से बचकर जाना परदेसी
यहां मेनका की चितवन पर मत ललचाना परदेसी।

पुरोहित : इति वाः कथितः विप्रा : सत्यनारायण व्रतम्
यत्कृत्वा सर्वदुखेभ्यो मुक्तो भवित मानवः ।
विशेषतः कलियुगे सत्यपूजा फलप्रदा
इति श्री स्कंद पुराणे रेवा खंडे सत्यनारायण व्रत कथायां पंचमोध्याय : ।

लौका : पंचो । आप सबने बड़े ध्यान से भक्ति से सत्यनारायण की कथा सुनी । यही कथा हमारे बाप–दादा, बाबा–परबाबा सुनते चले आ रहे हैं । इसमें कहीं हुई सारी कथायें हमें यह बताती हैं, जो सत्यनारायण की कथा नहीं सुनता वह तमाम पापों, दुखों और नाना प्रकार की विपत्तियों को प्राप्त होता है । पंचो, लेकिन यह कोई नहीं सुनता कि वह सत्यनारायण की कथा क्या है । जैसे अब तक हमें सिर्फ यह बताया गया है कि अपने से बड़ों का विरोध करने से क्या–क्या दंड मिलता है, पर कभी यह नहीं बताया गया कि विरोध

क्या है । तो पंचो, मैं हाथ जोड़कर आप सबसे प्रार्थना करता हूं कि इसी इतवार को, संध्या समय मेरे घर पधारिए । हम सब सत्यनारायण की कथा सुनेंगे । पंचो, न्यौता कबूल हो । हाजिर है । हल्दी सुपाड़ी अक्षता ..... ।

(लौका सबको देता है । सिर्फ देवधर नहीं लेते । लौका सबको प्रणाम करके चला जाता है ।)

देवधर : हट । शूद्र लौका सत्यनारायण की कथा कहेगा । यह सरासर अधर्म है । हिन्दू धर्म खतरे में है । लौका जानबूझकर हमारे शांत इलाके में साम्प्रदायिक आग भड़काना चाहता है । सत्यनारायण की कथा हिन्दू धर्म है । धर्म विश्वास है । उसी विश्वास पर यह नीच चोट करना चाह रहा है । भूख, शूद्र और अज्ञान यह तीन धर्म–साधना के बहुत बड़े विध्न हैं । शतपथ ब्राहमण और मनुस्मृति में कहा है – अब्राहमण और शूद्र ब्रहमा विद्या के अधिकारी नहीं । शूद्र को वेद के पढ़ने–सुनने की मनाही है । शूद्र शमशान समान है । यदि वे धर्म ग्रंथ पढ़ते– सुनते पाया जाए तो उसकी जबान काट देनी चाहिए । उसके कान को पिघले सीसे और लाख से भर देना चाहिए । जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः ।

(देवधर अपने लोगों के साथ अलग में)

इन–इन गांवों में ब्राहमणों को भड़का दो, चमार–शूद्रों के खिलाफ । सत्यनारायण की कथा लौका कहने जा रहा है । – आग लगाने के लिए इतना काफी है।

पुरोहित : उसका सर्व सत्यनाश होगा । बिना आरती लिए, यज्ञहोम पूर्ण हुए, बिना प्रसाद पाए लौका चला गया । उसने जघन्य पाप किया। उस पर पाप का वज्र गिरेगा। उसका सर्वनाश होगा । जैसे कन्या कलावती का हुआ । जैसे राजा तुंगध्वज का हुआ, जैसे .....

गपोले : जैसे, जैसे क्या ? जैसे क्या ? .....

पुरोहित : जय लक्ष्मीरमणा । जय लक्ष्मीरमणा ।

(पुरोहित के साथ लोग गाते हैं । घंटा आरती संगीत)

जय लक्ष्मी रमणा जय लक्ष्मी रमणा
सत्यनारायण स्वामी जन पातकहरणा । जय0 ...
रत्न जड़ित सिंहासन अद्भुत छवि राजे
नारद करत निरंतर घंटा ध्वनि बाजे । जय0 ...

पहला दृश्य

(लोग गा रहे हैं)

जागो रे जागो दीया जलाओ महल घुसा अब चोर
महल हला चोर रे पलनिंया डगमग डगमग डोले रे ।
चारि जने मिलि लूटैं नगरिया, नगरिया लागी आगि रे
करेजा मोर थरथर कांपे रे ।
केहू नहिं जागे तै कर्म नसावन
राम हमरी कौन तकसिरिया केऊ न मुख बोले
ना रो हिरना, बिलखि मत हिरनी रे
देखो कब तक सहूं मैं अगिन बान रे ...
जागो रे जागो दीया जलाओ ...

(सारे वातावरण में जन कोलाहल और संगीत भरा हुआ है । देवधर और जीतन आते हैं ।)

देवधर : अरे, वह सत्यनारायण की कथा कहां है ?

जीतन : कुछ नाच–गाने का मेला लग रहा है ।

देवधर : बड़ा प्रपंची है लौका । गांववालों को मूर्ख बनाना जानता है । इस मूर्ख को अब मैं सिखाऊंगा । यह गवांर देहाती मेरी जगह लेना चाहता है !

जीतन : आप इतना परेशान क्यों हो रहे हैं ?

देवधर : तुम नहीं समझते ? अगर इस तरह लोगों ने सोचना शुरू कर दिया तो हम कहीं के न रहेंगे । लोगों को भड़काकर हमारी बुनियाद ही उलट देना चाहता है । लोगों पर इसका प्रभाव है । कहता है – राजनीति ने जीवन के मंदिर को उल्टे खड़ा कर दिया है । बड़ी खतरनाक बात है ।

जीतन : कैसे ?

देवधर : लौका चरित्रवान है । सबका विश्वासपात्र है ।

जीतन : चरित्र बर्बाद किया जा सकता है । विश्वास तोड़ा जा सकता है ।

देवधर : कैसे ? क्यों ?

जीतन : बात यह है कि सत्य तो कोई अपने जीवन में जी नहीं पाता । सत्य के लिए उसे इम्तिहान देना पड़ता है । उसी के लिए विपत्ति और बलिदान सहना होता है । उसी में सारी जिन्दगी खत्म । इधर आप मौज कीजिए ।

देवधर : तुम समझते नहीं, सच्चाई यह है कि ...

जीतन : देवबाबू, हर सत्य परिवर्तनशील है – ऐसा महात्मा बुद्ध ने कहा है ।

देवधर : मगर लौका कहता है – हर सत्य नया होता है। वह जिया जाता है । जो जिया न जा सके, उसे सत्य नहीं मानता ।

जीतन : सोचिए भला, यहां कौन जी सका है अपने सत्य को ? सत्य हरिश्चन्द्र नहीं जी सके, सिर्फ यह साबित करने में कि वह सत्यवादी हरिश्चन्द्र हैं, सारी जिन्दगी तबाह हो गई । सब कुछ बिक गया । और राजा इन्द्र बना रहा ।

देवधर : वाह–वाह, खूब कही, यह तो सही है । भाई, तुम खूब सोचते हो, लौका को सत्य की परीक्षा में डालकर बर्बाद कर दो । मैं तुम्हें मुंहमांगा इनाम दूंगा ।

जीतन : लौका ने कभी आपको कोई वचन दिया है ?

देवधर : उसमें क्या है, वचन ले लूंगा । आदमी शरीफ है ।

जीतन : फिर मैं देख लूंगा ।

(गपोले नारद के भेष में आते हैं ।)

देवधर : अरे गपोले, यह क्या भेष बना लिया ?

जीतन : अरे, वह सत्यनारायण की कथा कहां है ?

गपोले : मुझे कुछ नहीं पता, क्या । लौका तो नाटक खेलने जा रहा है– सत्य हरिश्चन्द्र। मैं नारद का पार्ट कर रहा हूं, क्या ।

जीतन : लौका भी पार्ट कर रहा है ?

गपोले : जी हां । हरिश्चन्द्र का ।

देवधर : बात बन गई । वह कहां है ?

गपोले : ऐसा हुआ कि अब तक दो नटुए नहीं आए, क्या । हरिजन और ब्राहमणों में उधर दंगा हो गया है । गांव के गांव जल गए । आग बुझाने के लिए कुएं से पानी नहीं लेने दिया ब्राहमण –ठाकुरों ने । खूब की पिटाई । किसी की नाक काट ली । किसी की आंखें निकालीं ।

देवधर : (अलग से) तो अपना काम शुरू हो गया है ।

जीतन : समझिए, इधर भी मामला ठीक बैठेगा ।

देवधर : (प्रकट) उसे भेजो मेरे पास । नटुओं का प्रबंध मैं करता हूं ।

(गपोले भीतर जाते हैं ।)

देवधर : गांव के लोग राजनीति के दांवपेंच कभी नहीं समझ सकते । भावना पर जीते हैं। इन्हें भावना के ही डंडे से हांकिए ।

जीतन : पर यह हिंसा है ।

देवधर : भाई, कितना समझाऊं तुम्हें ?

जीतन : तभी लौका उसके खिलाफ है ।

(उधर घायल लोग आते हैं । कच्चे कुएं के पास कराहते हुए बैठते हैं । झोपड़ियों से स्त्रियां आकर उन्हें संभालती हैं ।)

देवधर : देखो जीतन गुरू, यही है तुम्हारी सारी दिक्कत । तुम झटे सोच–विचार करने लगते हो । देखो, लौका का विश्वास जीतने के लिए सुनहरा मौका सामने है । उसके नटुए नहीं आये । एक नटुआ तुम बन जाओ । और अगर लोग काफी सिफारिश करें, तो दूसरे नटुए का पार्ट मैं कर लूंगा । और इसी बीच लौका से कोई वचन भी ले लूंगा । यह सारा संसार नाटक है, किसने कहा है यह ?

(लौका गपोले के साथ आता है।)

लौका : देरी के लिए क्षिमा कीजिए ।

देवधर : अरे भाई, वह सत्यनारायण की कथा कहां है ? ... अच्छा किया, उस झंझट में नहीं पड़े, वरना ये हिन्दू लोग ... बड़े अंधविश्वासी । पर कोई नया नाटक खेलते । थोड़ा चटकदार । हुस्न और मारपीट, फिल्मी जमाना है न । और फिर भाई, जनता का मनोरंजन तो होना ही चाहिए । खैर, बोलो क्या मदद चाहिए ?

लौका : विश्वामित्र और इन्द्र का पार्ट करने वाला कोई नहीं है ।

देवधर : भाई, विश्वामित्र तो जीतन गुरू को बना लो ।

गपोले : और आप इन्द्र बन जाइए । क्या ।

देवधर : भाई, यू मुझे नाटक से बहुत दिलचस्पी है । पर मेरे पास इतना वक्त नहीं है ।

गपोले : देखिए, जनता जनार्दन अब प्रसन्न हो जाएगी ... । क्या ।

देवधर : यह सच है, मैं जनता जनार्दन का हूं । पर मजबूर हूं मेरे पास वक्त नहीं है ।

लौका : खैर, हम बिना इन्द्र के ही नाटक करेंगे ।

देवधर : नहीं–नहीं–नहीं । यूं मैं तैयार हूं, अगर तुम कहो ।

लौका : मैं क्या कर सकता हूं ।

देवधर : तुम बहुत भले आदमी हो । चलो तुम्हारी खुशी के लिए कर लूंगा पार्ट ; मगर वह शैव्या का पार्ट कौन कर रहा है ?

लौका : शैव्या के लिए नटुआ है ।

देवधर : देखो–देखो–देखो, वह पुराना जमाना गया जब नटुआ औरत का पार्ट करता था। मेरी सेक्रेट्री है, ओ मिस पद्मा, 'कम हियर ।'

(पद्मा आती है ।)

देवधर : फर्स्ट क्लास हिरोइन है ।

गपोले : ठीक है, पतुरिया का पार्ट कर लेंगी । क्या ।

पद्मा : क्या ? 'आई डोंट लाइक दिस देहाती ड्रामा ।' (अलग से) पर ड्रामा मजेदार है। मेरी जिन्दगी भी तो एक ड्रामा है । इतनी सजी रहती हूं, बनी–ठनी रहती हूं । जो नहीं हूं वहीं दूसरों के लिए हूं । देवधर इन्द्र हैं । मैं उसकी मेनका हूं । देवधर देवराज हैं तो मैं उसकी उर्वशी हूं । फर्स्ट क्लास चलेगा । फोक थियेटर में मेरी दिलचस्पी है ।

गपोले : वाह–वाह, क्या तेरी हस्ती है ।

पद्मा : पर थोड़ा नखरा तो करना ही पड़ेगा। ऐसे मान गई तो मिस पद्मा क्या हुई ! देखिए सर, फोक थियेटर पसन्द है मुझे, पर यह देहाती ड्रामा कतई पसन्द नहीं।

गपोले : अरे मान भी जाबा – क्यों तरवासा ?

देवधर : जाइए, आप लोग तैयारी कीजिए, मैं इन्हें समझाता हॅ ।

(सब अन्दर जाते हैं ।)

देवधर : देखो, मिस पद्मा, यह मेरा काम है । समझीं ? लौका मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है। इसे अपने हुस्न की डोर से बांध लो ।

पद्मा : यह इतना आसान नहीं है ।

देवधर : पर लौका बदनाम तो हो सकता है । कई रात तक इस नाटक को चलाओ । इसे खत्म ही न होने दो । आखिर सब नाटक ही तो है । जो इनाम कहोगी, दूंगा ।

पद्मा : थैक्यू । (स्वगत) हर कोई इसके लिए एक चीज है । इनके इस्तेमाल की चीज। आखिर सब नाटक ही तो है इनके लिए । मेरे लिए वही जीवन है । शैव्या का चरित्र आखिर यह नाटक किसका है ? शैव्या के चरित्र का सत्य पाऊंगी । (प्रकट) यस सर, मैं शैव्या बनूंगी, जो कुछ बनना होगी बनूंगी ।

(पद्मा को संग लिए देवधर अन्दर जाते हैं । संगीत बजता है । रंगा आता है ।)

रंगा : महामुक्तिदायक अहा मंगल मोद निधान
सत्य हरिश्चन्द्र का चरिता सुनो लगाकर कान
सुनो लगाकर कान ध्यान से दर्शन करो चरितवर्धन है
सुधा बूंद बरसावन चित्तकर्षन सुखद सरन है ।

(संगीत)

रंगा : हरिश्चन्द्र महाराज विदित हर लोक क्षत्रधारी थे
मन बचन कर्मधर्मी ओ सतधारी थे
नीति निपुण गुणवान वेद अनुकूल सदाचारी थे
रखते जिनपर दया निरन्तर शंकर त्रिपुरारी थे ।

(संगीत)

रंगा : सतवादी का था सकल भूमंडल पर राज
पुरी अयोध्या में हुए हरिश्चन्द्र महाराज ।
देख भूपति के सत को, हुई चिंता सुरपति को
सकल काया कुम्हिलानी

सुरंपति विश्वामित्र से बोले
पास बुलाकर बानी

(संगीत)

रंगा : इन्द्र विश्वामित्र से कहते हैं –
यत्न बता चिंता हरो
मुनिवर दीनदयाल
वरना इन्द्रासन ले गया
हरिश्चन्द्र भूपाल ।

(नारद के भेष में गपोले दौड़े आते हैं ।)

गपोले : अरे–रे–रे, यह क्या कर रहा तू, क्या ! सारा नाटक तू गाकर सुना देगा, तो हमारा क्या होगा, क्या ?
रंगा : भाई, जो बात सब जानते हैं, उसे दिखाने में क्या फायदा !
गपोले : क्या ? मैं समझा नहीं, क्या ?
रंगा : मतलब सतयुग में हरिश्चन्द्र एक राजा थे ।
गपोले : राजा नहीं, सत्यवादी राजा थे ।
रंगा : इन्द्र को उससे हुई परेशानी ।
गपोले : यह थी उसकी नादानी ।
रंगा : इन्द्र ने विश्वामित्र से कहा – मुनिवर उसकी लो परीक्षा ।
गपोले : अच्छा ।
रंगा : **विश्वामित्र बोले –**
गपोले : क्या बोले ?
रंगा : जिसके भय से भुवन चौदहों कांप रहे
सुर भी जिसके आज्ञाकारी हों ।
मेंह बरसे नहीं बिना उसके कहे
आप देवराज और एक नर से डरे !
ऐसी माया रचूं सत्य से वह डिगे
और उसका ईमान दर–दर बिके ।

(दोनों साथ गाते हैं ।)

ऐसी माया रचूं सत्य से वह डिगे ।
और उसका ईमान दर–दर बिके ।
गपोले : इसके बाद ?
रंगा : इसके बाद नदारद आते हैं ।
गपोले : आते हैं नहीं । मैं नदारद मौजूद हूँ । मेरा पार्ट क्यों काटते हो ?
चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार ।
पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र को टरे न सत्य विचार ।
रंगा : बस–बस–बस ।
गपोले : बस–बस–बस क्या, इसके बाद नदारद और विश्वामित्र में झगड़ा होता है ।
जीतन गुरू, विश्वामित्र का पार्ट कर रहे हैं । आज मैं दिखाता अपना जौहर, उन्हें छठी का दूध याद आ जाता । देवधर बाबू इन्द्र बने हैं ।
रंगा : कलयुग के इन्द्र तो हैं ही ।
गपोले : तो मैं कलयुग का नारद हूं क्या । तो मैं जा रहा हूं ।
रंगा : अरे सुनिए तो ! वह भी पार्ट कर रही है इस नाटक में ! इन्द्र की मेनका–मिस पद्मा !
गपोले : हॉ–हॉ, तो फिर क्या हुआ ?

रंगा : विश्वामित्र के वचन सुन सुरपति नावे शीश
गन अयोध्या को कियो देकर मुनी आशीश ।
पुरी अयोध्या में राजा हरिश्चन्द्र क्षत्रधारी थे
सचित्र सभासद परिजन पुरजन आज्ञाकरी थे ।
नीति निपुण गुणवान वेद अनुकूल सदाचारी थे
रखते जिनपर दया निरंतर शंकर त्रिपुरारी थे ।

दोनों : नीति निपुण गुणवान वेद अनुकूल सदाचारी थे ।
रखते जिनपर दया निरंतर शंकर त्रिपुरारी थे ।

गपोले : थे । फिर क्या हुआ ?

रंगा : माया रचकर स्वप्न में लिया राज्य सब दान
और दक्षिणा के लिए बिकने चले सुजान ।

(संगीत)

रंगा : विश्वामित्र के वचन सुन मान हिये आनन्द
काशी बिकने को चले महाराज हरिश्चंद्र ।

(एक ओर विश्वामित्र के साथ हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहित चलते हुए दिखते हैं । दूसरी ओर गांव के लोग खड़े दिखते हैं ।)

गांव के लोग : हरिश्चंद्र कहो तुम कब तक कहां बिकोगे ?
बोली बोलेगा कौन हाट वह होगी कैसी ?
कौन उठाये डांड़ वाट वह होगी कैसी ?
देगा कीमत कौन भला क्या बता सकोगे – हरिश्चंद्र ।
माया रचकर जिसने ऐसा स्वप्न दिखाया
लूटा उसको दान जहां से जैसा पाया
वही खरीदेगा तुमको अब जहां बिकोगे – हरिश्चंद्र ।
हरिश्चंद्र बिके हाय सतयुग की धर्म हाट में
त्रेता में ही बिके द्वापर के राजपाट में
सभी बिकाऊ हैं कलयुग में कुछ भी ले लो
हरिश्चंद्र बोलो तुम किन दामों यहां बिकोगे – हरिश्चंद्र ।
दानी बिके बाजार भिखारी दान बांटता
लूटे सकल बजार उलटकर दाम मांगता
नदिया सूखी अब कैसे नाव चढ़ोगे ?
हरिश्चंद्र कहो तुम कब तक कहां बिकोगे ?

दूसरा दृश्य

(सब पथ पर चल रहे हैं ।)

रंगा : राजा रानी सुत सहित सतधारी गुणधाम
त्याग अयोध्या को चले करके अंत प्रणाम ।
त्याग किया नहिं सत्य नृप सब राज अपना तज दिया ।
मुनिराज के संग मुद्रित मन हो गमन काशी को किया ।
सूरज तपै धरती जलै ज्वाला फुंके लूहें चलें
संकट अनेकन सहि रहे तृण भर नहीं प्रण से टलें ।

(रास्ते में बांसुरी बजाता हुआ एक चरवाहा मिलता है । बांसुरी का संगीत उभरकर पूरे वातावरण में छाने लगता है ।)

हरिश्चंद्र : महर्षि विश्वामित्र, क्या देख रहे हैं ?
विश्वामित्र : यह कौन है ?
शैव्या : रोहित, पूछो इससे ।
रोहित : यह चरवाहा है ।
हरिश्चंद्र : गा रहा है ।
विश्वामित्र : क्या ?
रोहित : गीत अपना अकेले कंठ से । सहूंगा । सब कुछ भोगूंगा इसी गीत के लिए । उसके लिए अपने को बेच दूंगा । पर उसे नहीं बिकने दूंगा ।
विश्वामित्र : कितना महान है यह चरवाहा !
रोहित : सब मोह है उसका । उस पर फेंका हुआ किसीका मायाजाल है ।
शैव्या : न जाने कब से दूसरों को देते–देते, फिर भी जो शेष बचा है,उसीसे तुम भयभीत हो । वह गा रहा है ।
रोहित : किसी ने उसे मंत्र से बांध रक्खा है ।
हरिश्चन्द्र : रोहित !
रोहित : इस तरह अपने संगीत से यह सबको फंसाता है । लोगों को बांधता है । महामायाबी है ।
शैव्या : रोहित !
रोहित : जैसे वह दान नहीं छल था, वैसे ही यह संगीत नहीं मायाजाल है । इसी संगीत से बहेलिया जंगल में शिकार करता है । जैसे दान का झूठा धर्म रचकर एक–दूसरे को बेचता–खरीदता है ।
हरिश्चन्द्र : यह रोहित नहीं, उसकी प्रतिक्रिया बोल रही है । उसे अब संगीत भी छल लग रहा है, जब मैं उससे कहता हूं – अपनी मर्यादा में रहो ।
रोहित : यह मर्यादा का पाठ किसका है ?
हरिश्चन्द्र : यही है सत्यनारायण ! कहीं कुछ दूसरा नहीं है। ऋषि विश्वामित्र हमारे साथ हैं।
शैव्या : कैसे ऋषि, कैसे ज्ञानी, जिसे भूख हो राज सिंहासन की ।
हरिश्चन्द्र : वह राजा ही कैसा, जो सिंहासन से चिपका हो ! वह कैसा मनुष्य, जो देकर देना नहीं जानता !

(चलते हैं ।)

विश्वामित्र : रोहित, तुझे दान पर विश्वास है ?
रोहित : नहीं ।
विश्वामित्र : सत्य पर ?
रोहित : मेरे लिए वह सत्य झूठ है जिसके लिए जीवन भर केवल विपत्तियां झेलनी पड़ें । त्याग और बलिदान की सूली पर चढ़कर सत्य की परीक्षा देनी पड़े । मेरे लिए

सत्य वही है, जो सहज ही जीवन में जिया जा सके । जो जिया न जा सके वह झूठ है । वह धोखा है ।

हरिश्चन्द्र : तर्क मत करो, रोहित । ऋषि महाज्ञानी है ।

रोहित : महाज्ञानी से दान–धर्म के उस रहस्य को जानना चाहता हूं जिसके कारण एक लेने वाला बनता है, दूसरा देने वाला ।

विश्वामित्र : दाता से ही धर्म बनता है, रोहित । धर्म के रहस्य को समझने के लिए धैर्य चाहिए ।

रोहित : मेरे धैर्य की कल्पना तुम नहीं कर सकते महर्षि ।

शैव्या : शांत, रोहित !

रोहित : माया रचकर धर्म बनाया
माया से फिर स्वप्न दिखाया
उसी स्वप्न में दान ले लिया
आंख खुली दक्षिणा बाकी
चले बेचने सबको काशी ।

(रंगा गाता है – 'माया रचकर धर्म' . . . । यात्रा चलती है ।)

विश्वामित्र : लगता है, आपके राज्यदान से अयोध्या की प्रजा बहुत दुखी है !

हरिश्चन्द्र : अयोध्या के लोग मन के धरातल पर नहीं रहते । सारा राज्य प्रजा का ही था ।

विश्वामित्र : मन और दुख दोनों समान हैं ?

हरिश्चन्द्र : अतृप्त वासनाओं का ही नाम मन है । और यही मन दुख की सृष्टि करता है । . . . यह तो दृश्यमान जगत है, इसके भीतर भी एक अदृश्य जगत है । दोनों गतिमान हैं । यहां हर वस्तु सबकी है और कोई भी वस्तु किसीकी नहीं है । यहां देकर ही पाया जाता है और त्यागकर ही भोगा जाता है ।

शैव्या : यह किसका अनुभव है ?

रोहित : मेरा नहीं है ।

शैव्या : मेरा भी यह अपना अनुभव नहीं है। बस सुनती चली आई हूं ।

रोहित : मेरे लिए मेरा अनुभव ही सत्य है ।

हरिश्चन्द्र : अनुभव सनातन होता है ।

रोहित : अनुभव कोई व्यक्ति करता है ।

(यात्रा चलती रहती है । फिर वही चरवाहा बांसुरी बजाता हुआ दिखता है ।)

विश्वामित्र : क्यों, तुम क्या कहना चाहते हो ?

(बांसुरी बजाता है)

हरिश्चन्द्र : उत्तर मिला ?

विश्वामित्र : क्या यह बोलता नहीं ?

हरिश्चन्द्र : यह शब्दों के जगत से दूर अपने जीवन जगत में है । सुनो अपने ब्रहमतेज से, यह उत्तर दे रहा है ।

(बांसुरी बजाता हुआ चरवाहा चला जाता है ।)

विश्वामित्र : हॉ, मैंने सुना – जो शब्द जीवन में जिया गया है, वह सारा जीवन उसी पर टिका है । वही जीवन है धरती । शब्द है आकाश । और जो शब्द हम बिना जिऐ बोलते हैं, वह मात्र प्रतिध्वनि है । तो विश्वामित्र केवल शब्द है और जो जी रहा है वही सत्य हरिश्चन्द्र है ? नहीं, यह असत्य है ।

हरिश्चन्द्र : हम सब एक साथ हैं ।

विश्वामित्र : काशी अब दूर नहीं है ।

हरिश्चन्द्र : हम उसी पथ पर हैं ।

विश्वामित्र : नहीं । यह सारा जगत, यह सारी सृष्टि एक पदार्थ है । जिसमें दो विरोधी तत्व हैं । उसी संघर्ष की धुरी पर सब कुछ गतिमान है। जो दृश्य है, वही सत्य है ।

हरिश्चन्द्र : द्वैत केवल दशा है मन की, सृष्टि की धुरी एक है ।

विश्वामित्र : देखना है काशी में धुरी कौन है । क्या है शब्दों में और सत्य कौन है ?

हरिश्चन्द्र : मैं तर्क नहीं करता । काशी हो या अयोध्या कुछ फर्क नहीं पड़ता ।

(संगीत)

रंगा : सत्य डिगाने के लिए गाधि सुतन मुनिराज ।
जाल बिछाये है बहुत मगर सधा नहीं काज,
अंत में मुनि शरमा के, चले डग तुरत बढ़ाके
फट जाय गगन चाहे धरन रसातल जावे
हरिश्चन्द्र नहीं सत कभी डिगावे ।

तीसरा दृश्य

(देवधर आते हैं, जीतन को पुकारते हुए)

देवधर : जीतन ! ओ जीतन गुरू । जीतन ...

जीतन : (आते हैं) क्या है देवबाबू ?

देवधर : कहां फंस गये इस नाटक में ? इससे तो अच्छा था, लौका सत्यनारायण की कथा कहता और यहां ब्राहमण और शूद्रों में मारपीट होती, लौका अब तक जेल में होता । गांवों में आग लगकर बुझ गयी ।

जीतन : लौका ने कहा – हिंसा का जवाब हिंसा से मत दो भाइयो । सब उसकी बात मानकर चुप रह गए ।

देवधर : लौका को उस दंगे में झोंक देना चाहा था । पर यह न जाने कैसे बच गया ! न जाने कैसी मेरी जलाई हुई आग बुझा देता है ! अब मुझे कोई दूसरा उपाय करना होगा ।

जीतन : लौका कहता है – देख रहा हूं । हम कब तक कितना सह सकते हैं ।

देवधर : मैं दिखाऊंगा ।

(विराम)

जीतन : नाटक अच्छा नहीं लग रहा है ?

देवधर : पर मेरे पास इतना वक्त नहीं है ।

जीतन : आप आइए न, अपना काम देखिए ।

देवधर : लौका को खत्म करने के अलावा भी मेरा कोई और काम है ?

जीतन : ऐसा मत सोचिए, लौका केवल नाटक कर रहा है ।

देवधर : पर सारा नाटक तो मेरी वजह से हो रहा है । समझने की कोशिश करो जीतन गुरू, मैं ही यह नाटक खेल रहा हूं । क्या समझे ?

जीतन : वही समझने की कोशिश कर रहा हूं ।

देवधर : और जब चाहूं तो इस नाटक का पर्दा गिरा सकता हूं । सब हाथ का खेल है मेरे । सत्यनारायण की कथा मेरे पास है ।

जीतन : यही तो लौका कहता है ।

देवधर : यही तो असली समस्या है । यह बात लौका क्यों कहता है ?

जीतन : वह सोचता ...

देवधर : सोचने–विचारने का काम मेरा है ।

जीतन : यह रहस्य अब मेरी समझ में आया विश्वामित्र बनकर ।

देवधर : अब आगे यह नाटक नहीं होगा ।

जीतन : क्यों ?

देवधर : क्योंकि मैं नहीं चाहता ।

जीतन : सब आपके चाहने पर क्यों होता है ?

देवधर : हुआ है । होता है और होगा ।

जीतन : ऐसा क्यों है ?

देवधर : बकवास बंद करो ।

जीतन : यह नाटक है ।

देवधर : मुझे इसका पता नहीं था ।

जीतन : जैसे–जैसे विश्वामित्र के चरित्र में बैठता जा रहा हूं, लगता है मैं अपने से आमने –सामने हो रहा हूं । मैं क्या हूं ? लौका क्या है ? आप क्या हैं ? इसे देखने लगा हूं ।

देवधर : मैं उसे जानता हूं, वह मेरा दुश्मन है ।

जीतन : पर आप अपने आपको नहीं जानते ।

देवधर : तुम्हारा दिमाग खराब हो रहा है ।

जीतन : मुझे लगता है, जो मैं सोचता हूं वह मेरा अनुभव नहीं है ।

देवधर : तुम्हारा अनुभव क्या है ?

जीतन : अनुभव के बाद ही बता सकूंगा ।

देवधर : मेरा अनुभव है, लौका बदमाश है ।

जीतन : पर यह सच नहीं है ।

देवधर : सच जैसी कोई चीज नहीं है ।

जीतन : यही मैं सोचता था, पर यह मेरा अनुभव नहीं था । जो आप सोचते थे, वही मुझे विश्वास करना पड़ता था ।

देवधर : मैं अब भी कहता हूं – सत्य जैसी कोई चीज नहीं है ।

जीतन : अर्थात् सब कुछ असत्य है !

देवधर : केवल शक्ति को छोड़कर ।

जीतन : शक्ति माने, कुछ चंद ऊंचे लोगों की राजनीति ?

देवधर : केवल मैं ।

जीतन : नहीं 'मैं' इन्द्र है !

देवधर : जीतन ! खबरदार !

जीतन : मैं कुछ देख रहा हूं !

देवधर : क्या ?

जीतन : जो झूठ है वह क्यों सच दिखाता है ? जो शक्तिशाली है वही क्यों इतना डरता है ? जो है नहीं, पर दिखता है, दोष हमारी ही आंखों का है ।

(गपोले आते हैं)

गपोले : आप यहां खड़े हैं, उधर विश्वामित्र की तलाश हो रही है, क्या ! पर्दा उठने को है । काशी का सीन आयेगा क्या !

देवधर : काशी में क्या होगा ?

गपोले : हरिश्चन्द्र डोम के हाथ बिक जाएगा ।

देवधर : फिर ?

गपोले : उधर रोहित की मौत होगी क्या! शैव्या उसकी लाश को मरघटर पर ले जाएगी। हरिश्चन्द्र मरघट का 'कर' मांगेगा और उसके सत्य की परीक्षा हो जायेगी । हरिश्चन्द्र परिवार सहित स्वर्ग को प्राप्त हो जाएगा । क्या !

देवधर : फिर ?

गपोले : फिर क्या! खेल खतम ! पैसा हजम ! आप रहे कायम, हरिश्चन्द्र को मिले स्वर्ग।

देवधर : फिर तो बहुत अच्छा है । क्यों जीतन, कुछ और तो नहीं है इस नाटक में ?

जीतन : सारा नाटक तो हमीं लोगों का बनाया हुआ है ।

देवधर : अहा–हा ! वन वेरी इम्पार्टेन्ट प्वाइण्ट । एक खास बात हाथ लग गई – शूद्र लौका हरिश्चन्द्र का पार्ट कैसे कर सकता है ! यह गौर करने की बात है ।

राजा महाराजा, देवता पंच स्वरूपों का अभिनय करने वालों का चयन केवल ब्राहमण जाति में से ही होता है ।

गपोले : (परस्पर) यह बात तो सही है । यह तो परम्परा से चला आया है । शूद्र ऋषि, मुनि, देवता का पार्ट नहीं कर सकता ।

माई : क्यों नहीं ?

देवधर : तू कहां से टपक पड़ी ?

माई : किसी का कोई डर है का ?

(बैठ जाती है ।)

देवधर : ऐ पागल बुढ़िया ! वह जगह तेरे बैठने की नहीं है । ... खींचकर बाहर फेंक दो!

गपोले : सरकार ! मजेदार है नौटंकी । सवा सेर पर छटंकी । यह कहते हुए मुझे होता है सदमा, अब तक कुछ नहीं कर पाई मिस पदमा !

देवधर : (पुकारते हैं ।) मिस पद्मा ! पदमा !

गपोले : पदमा देवी ! सुनिए ! सरकार की बात को सुनिए ! दोमें से एक को चुनिये । नहीं तो सिर धुनिये ।

(पद्मा आती है ।)

देवधर : कहां हो सुंदरी, जब तक तुम्हारा कोई जौहर नहीं देखने को मिला । कोई नाच–गाना करो । हुस्न का जादू फैलाओ । बिजली गिराओ । लौका को बुलाओ । फंसाओ । बड़ा हरिश्चन्द्र बना फिरता है !

पद्मा : (स्वगत) इसके लिए अपना हुस्न बेचो, यही इसका काम है । पता नहीं यह किस–किस चीज का दलाल है ! इसका संवाद इसकी शक्ति है – इसके लिए स्त्री जादू है । औरत बिजली है । लौका मनुष्य नहीं शूद्र है । (प्रकट) हां, क्यों नहीं, हुस्न का जादू मारूंगी । जवानी की बिजली गिराऊंगी ।

(संगीत । पद्मा नाचती हुई गाती है ।)

नजर लागी राजा तोरे बंगले में
जो मैं होत्यूं राजा बेला चमेली
गमकि रहत्यूं राजा तोरे बंगले में
जो मैं होत्यूं राजा कारी कोइलिया
कुहूकि रहत्यूं राजा तोरे बंगले में ।
जो मैं होत्यूं राजा काली बदलिया
बरसि रहत्यूं राजा तोरे बंगले । नजर लागी ...

चौथा दृश्य

(काशी का बाजार । दुकानें लगी हैं। चीजों के बेचने वाले आवाजें लगा रहे हैं । एक ओर काशी की प्रसिद्ध पतुरिया का कोठा है)

फूलवाला : अरी गुलमेंहरी वारि ओ फुलवारि
फूल रही कलियां
अरी चलु बाग तमासे ओ भलामानस
तोरन दे कलियां ।

पटहार : अरी सिरंब का जूरा मांग सिन्दूरा
मोतिन मांग भरी
अरी दरियाई चोली ठीक किनारी ऊपर पटसारी
असी अतरस का लहंगा मोल महंगा ऊपर चादरिया ।

तमोली : काशी का पान जोड़ी शंकर पारवती सुजान
पान मगही का कील कांटा जड़ाओ कगही का
पान चुरमुरा है असली जवानी पे चढ़ा है ।
आवो आवो मेरी मैना तेरे दिन सब कुछ सूना
खाय सो ओंठ चाटे, न खाय सो जीभ काटे
काशी का पान चौरासी मसाला और एक जान ।

भांगवाला : शिवशंकर हरा हरा । एक गोली में पूरा ब्रह्ममाण्ड भरा ।
नवरतन पड़ा । शिवजतन किया। बमभोले गुपचुप ।
मत रह चुप चुप । काट दे लहासी राजा ।
बजन दे सब और बाजा ।
गोलियां नरम चभाका । मार गप्प से कड़ाका ।

नारंगीवाली : नारंगी ले नारंगी । मन जोड़े नारंगी । तन जोड़े नारंगी ।
आनन्द बाग की नारंगी । मैं तो पिया के संग रंगी ।
मैं तो भूली लेकर संगी । हाय रे हाय रंगतरा ।
नैन मारे संगतरा । दोनों हाथों लो नारंगी ।

भांगवाला : दोनों हाथों से ले भंग ।

नारंगीवाली : नारंगी के संग ।

भांगवाला : नारंगी । संतोले ।

(पतुरिया के कोठे पर संगीत उभरता है । पतुरिया दिखती है ।)

कुटनी : हाय मेरी भी बात सुन ले !
आवो आवो प्यारे ऐसे क्यों कतराये हो
काहे चलो छांह से छांह मिलाये हो
हाय जिय को मरम तुम साफ कहत किन
काहे फिरत मंड़राये हो ।
एहो छैला लुभायो उत जीवन
चलो नयो लुभायो हो ।

(एक छैला आता है ।)

छैला : आय हाय ! मोसो से जिया चढ़ल नहिं जाइ हो ।
बिनु प्यारी जिय अकुलाई हो
छिन–छिन बढ़त बिरह तन सजनी ।।
कटै न हाय बियोग की रजनी ।

कुटनी : हाय छैला, छम–छम–छम । ऐसी नारि निकारे दम ।
किधर तेरा ध्यान ऊपर देख पतुरिया ।
अरी कोई जात न देखा कवन लाल से जरिया

छैला : (पतुरिया को देखकर)
अरे नखड़ा करू थोड़ा राम निहोरा लागन दे छतिया
ओ मालिन दे एक गजरा
हाय तेरी आंखिन को कजरा
आह गजब की रसीली कमर की पतरिया ।

(एक ब्राह्मण आता है ।)

ब्राह्मण : शिव शंभू शिव शंभू
संतोला नहीं निंबू
अरी सौ साठ रजाइयां सोरह पांवरिया
सारी रैन पुकारा जाड़न हम मरिया ।

छैला : दरसन देउ नवेली
लजिन हम मरिया ।

(भंग पिये एक गुण्डा आता है ।)

गुण्डा : चुप वे । भड़ुए का साला महल में शोर किया
अरे राजन का बेटा महल में रंग किया ।

(पतुरिया नाचती–गाती है ।)

लाखों के बोल सहे
संवरिया तेरे लिए मैंने लाखों के बोल सहे ।

(सारा बाजार गमक उठता है । थोड़ी देर बाद अकेले नारद आते हैं । उन्हें देखते ही सारा वातावरण शांत हो जाता है ।)

नारद : नारायण, नमो नारायण । नारद की बात सुनो, ध्यान से, काशी के दुकानदारो, व्यापारी, खरीददारो, ठग–चोर–उच्चको, गुण्डा पहलवान छैला, सुनो । नाट्य शास्त्र, संगीत–शास्त्र, विद्या, कामशास्त्र, उच्चाटन तंत्र–मंत्र के विशारदो, सुनो ! वीरता, मृगयापटुता के धनी मानी सुनो ! नृत्याचार्य, कुटनी विकराला, राजसेवी, विलासी भट्ट पुत्र, चिन्तामणि सेठ व्यापारी बिट, नर्वक नट जुआरिओ सुनो ! रंगशाला, महल, मंदिर, अटारी, पानगोष्ठी से लेकर सुरासुन्दरी, भंग गोष्ठी के रसिको सुनो !

गुण्डा : अरे रे–रे–रे–रे ।

ब्राह्मण : बचो नारद से । नारद से बचो ।

कुटनी : क्यों भला, नारद की बात तो सुनो ।

ब्राह्मण : किसी आग में तेल डालने आये होगे ।

नारंगीवाली : अरे नारंगी देख नारंगी ।

कुटनी : ऊपर देख हरिभंगी ।

गुण्डा : मार गोरी नैना फाटि जाय बदरा ।

पानवाला : गुरू ! सावधान, यह नारद है ।

ब्राह्मण : एक बार ऐसा हुआ कि यही नारद जी गये शंकर भगवान के पास । शंकर जी समाधि लगाये तपस्या में मगन । वहां इनकी कोई दाल न गली । सो लपककर पहुंचे पारवती के पास । लगे बढ़ाई करने शंकर भगवान की ! और प्रेम करा दिया पारवती का बम भोलेनाथ से । फिर पहुंचे पारवती के माता–पिता के पास। लगा दी आग । आपकी बेटी एक पागल भिखारी से विवाह करने जा रही है । सो मच गया हुड़दंग । यह है नारद का रंग ।

नारद : नारायण ! नमो नारायण ! नारायण !

कई लोग : सो बात का है जी ?

नारद : दान–दक्षिणा के लिए विश्वामित्र सताये काशी बिकने के लिए हरिश्चन्द्र हैं आये।

(विश्वामित्र के साथ हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहित आते हैं ।)

रंगा : बेचे प्रानी तीन यह आज सरे बाजार
तीन सहस्र स्वर्ण मुद्रा की इनको है दरकार ।
बिक रहे हैं ये प्रानी तीन जिसे दरकार हो चला आये ।
नगर काशी के सभी नरनार
खरीदो जिसका हो विचार
बिक रहे हैं ये प्रानी तीन जिसे दरकार हो चला आये ।
नहीं है कुछ मोल–तोल
तीन सहस्र स्वर्ण मुद्रा की बोल
जरूरत जिसको हो ले जाये
बिक रहे हैं ये प्रानी तीन जिसे दरकार हो चला आये ।

(काशी के लोग घिर आते हैं। एक डोम आकर हरिश्चन्द्र को देखता है।)

डोम : पंचो मैंने कर लिया इसे पसंद तत्काल
इस नर का क्या मोल है मुनिवर दीनदयाल ।
मुनिवर दीनदयाल बताओ सत्य मोल इस नर का
डोम है मेरा नाम और है ठेका मरघट पर का ।
दो सहस्र स्वर्ण मुद्रा लो कमी नहीं मुझे धन की
हरिश्चन्द्रको चाकर राखूं है बस इच्छा मन की ।

विश्वामित्र : लाओ । स्वर्ण मुद्रायें गिनो ।

शैव्या : नहीं–नहीं । ऐसा नहीं होने दूंगी । पहले मैं बिकूंगी ।

हरिश्चन्द्र : कौन कब बिका, क्या अन्तर है !

शैव्या : है । है । है ।

हरिश्चन्द्र : सुनो ।

शैव्या : एक दिन आपने ही कहा था– वह एक दिन आयेगा जब मुझे आगे चलना होगा। मुझे पतिधर्म से भी ऊपर उठकर बलि धर्म तक पहुंचना होगा ।

हरिश्चन्द्र : तुम वहां पहुंच चुकी हो ।

शैव्या : अपने आपसे पहले आपको किसी कीमत पर भी नहीं बिकने दूंगी ।

हरिश्चन्द्र : नहीं, पुरूष के सामने स्त्री नहीं बिक सकती ।

शैव्या : स्त्रीत्व से भी बड़ा स्त्री का व्यक्तित्व है ।

हरिश्चन्द्र : वह तुम्हें प्राप्त है ।

शैव्या : तो बिकती हूं । अपने हृदय से समस्त संकोच और दुराव को हटाकर बिकती हूं। सुनो, जब तक खरीदना धर्म है बिकना धर्म बना रहेगा । यदि एक के प्रति धर्म करने के लिए दूसरे के प्रति अधर्म करना पड़े, तो जिसे हम धर्म समझते हैं वह अधर्म है । मुझे वह भी स्वीकार है । सबके कल्याण के लिए भी झूठ बोलना पड़े तो वह धर्म नहीं अधर्म ही रहेगा – फिर भी मुझे स्वीकार है । एक ही शक्ति दूसरों को मुक्ति देगी यह झूठ है । उस मुक्ति में परतन्त्रता के बीज होंगे, फिर भी मुझे स्वीकार है । जो भीतर है वही है बाहर । यदि दोनों के बीच आज यह विरोध की स्थिति है – तो इसका उत्तर दान नहीं बलिदान देगा ।

हरिश्चन्द्र : अनन्त आकाश में जितने जीव हैं उन्हीं की मुक्ति हमारी मुक्ति है ।

विश्वामित्र : क्या रखा है, तुम अब भी अपनी बात बदल सकते हो । जिसे स्वीकारा है उसे अस्वीकार कर सकते हो, जिसे अस्वीकारा है उसे स्वीकार कर सकते हो ।

हरिश्चन्द्र : शब्दजाल हमारी दुनिया नहीं है।

विश्वामित्र : तुम्हारी जो भी दुनिया हो, तुम जहां–जहां जाओगे, संघर्ष तुम्हारा पीछा करता रहेगा ।

रोहित : फिर भी हमें कोई अलग नहीं कर सकता ।
विश्वामित्र : अलगाव है । तभी तो संघर्ष है ।
हरिश्चन्द्र : तो तुम्हारे लिए जो संघर्ष है, वही मेरे लिए शांति है ।
विश्वामित्र : फिर वह एक कहां है ?
रोहित : जो तुम हो वही देखते हो, पर जो है उसे देखने के लिए आकाश से पृथ्वी पर आना होता है ।
हरिश्चन्द्र : और यहां के पाप–ताप माथे पर रखकर बहुत दूर जाना पड़ता है।
विश्वामित्र : नारद !
नारद : हरिनारायण ।
विश्वामित्र : दक्षिणा के लिए विलम्ब हो रहा है ।
नारद : देखो ना, विलम्ब करते हैं स्वयं । कहते भी हैं स्वयं । और जब मैं कहता हूं तो घूरते ही हैं स्वयं । परमानन्द । परमानन्द ।
नारंगीवाली : हे ! यह तो बड़ा मुरहा लग रहा है ।
गुण्डा : बड़े घोटे हैं गुरू, परम योगी हैं ।
ब्राह्मण : अरे चुपो । चुपो । परम योगी हैं योगी ।
नारद : नहीं भाई, सब गप्प है । अरे गुरू एक बीड़ा पान तो खिवाया हो ।
नारंगीवाली : हमार नौरंगिया ?
नारद : राजा हो । हम्में तनिको अच्छा नाहीं लागत नारंगी ।
नारंगीवाली : है ! बड़ा मुरहा हवै ।
ब्राह्मण : अरे इनकी यही मुराही झाड़ने के लिए तो विष्णु भगवान ने एक बार उनका सारा चेहरा ही बंदर का बना दिया था ।
नारद : हे भाई, तू कहां से आय गया बची में गप्प झाड़ने !
ब्राह्मण : मैं एक शुद्र ब्राह्मण हूं, महाराज ।
नारद : नारायण–नारायण । यह शुद्र–फुद्ध का होता है गुरू ? सही सही बतावा । जैसे हम पूछो । आज स्नान किया है ?
पानवाला : खूब पहिचान्यो ! का कहना !
ब्राह्मण : आज स्नान–ध्यान मना है । आज है अमावसी पुन्नवासी ।
छैला : भूखे पेट यहां कोई नहीं नहाता । ऐसी है ई काशी ।
गुण्डा : अरे तुम सच बोल्यो मामा ।
भांगनवाला : तोह का, तू मारपीट कै कर्‌यो अपना कामा । कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ीजामा ।
कुटनी : ऊ दिल बालम दूर गये अब, सोरहो दंड एकासी ।
कई लोग : (एक साथ) भूखे पेट कोई नहीं सोवे, ऐसी है ई काशी ।
छैला : (नाच पड़ता है) काशी बम भोले !

काशी बम भोले !
काशी काट लहासी
रानी आती है
राजा आता है
तेरा क्या कहना
रंग झंझर है
नैना बान है।
गुरू क्या कहने ... ।

(इसी बोल पर पतुरिया नाचत हुई आती है ।)

रंगा : इधर राजा से मुनि से कह रही रानी थी विलखाय

उधर परम सुन्दरी पतुरिया, कहन लागी हरसाय ।

पतुरिया : बार बार झुक कर करूं विश्वामित्र प्रणाम
मैं काशी की नगरवधू रूपा मेरो नाम ।
रूपा मेरो नाम नरगवधू मैं बनारस की
प्रेम कामिनी काजल हूं काशी की आंखों की ।
सुना है बिक रही है यहबाम
चली आई हूं छोड़ सब काम
मुझे दो इसे लीजो मनमानी दाम
सुन्दर है लुभावनी है प्यारा है नाम ।

रंगा : एक सहस्र स्वर्णमुद्रा है इस अबला का मोल
लेना हो तुझको अगर गांठ गिरह की खोल ।

पतुरिया : यह लीजिए उतनी स्वर्ण मुद्राओं की एक थैली ।

विश्वामित्र : अब मुझसे दक्षिणामुक्त हो गये राजा हरिश्चन्द्र । पर अब भी समय है । हां को न कहने का । और न को हां कहने का ।

रोहित : तुम्हारी भूख अब भी नहीं मिटी ?

विश्वामित्र : सोच लो, हरिश्चन्द्र, मैं अब भी तुम्हारा हित चाहता हूं ।

रोहित : हर राजा ने सदा यही कहकर प्रजा को ठगा है ।

हरिश्चन्द्र : शांत रोहित !

विश्वामित्र : पतुरिया के हाथों ऐसी पतिव्रता शीलवती स्त्री बिक जाय, फिर वह धर्म बचेगा कैसे, जिसके लिए सब कुछ किया । वह शैव्या कहां रह जायेगी जो तुम्हारी धर्मपत्नी है । उसके नारी धर्म की रक्षा तुम्हारा कर्म है ।

नारद : अब बताओ, नारद मैं हूं कि नारद है विश्वामित्र ।

विश्वामित्र : और तुम स्वयं बिककर चांडाल के घर जा रहे हो । जैसे आज से शैव्या पतुरिया होगी, उसी तरह आज से हरिश्चन्द्र चांडाल होगा ।

हरिश्चन्द्र : बताइए, आपके इस कष्ट को कैसे दूर कर सकता हूं ?

विश्वामित्र : मेरा कष्ट ?

हरिश्चन्द्र : क्योंकि ऐसा आप सोच रहे हैं । यह डाम–यह पतुरिया । ये लोग कहां के हैं ? कैसे आये ? मेरी तरह एक क्षण इनके भी जीवन में आया होगा – जहां इन्हें बिक जाना पड़ा होगा । जब तक खरीदने वाला रहेगा, कभी न कभी सबको बिकना पड़ेगा । उसे भी, जो खरीद रहा है। मैं ही डोम हूं । मैं ही हरिश्चन्द्र हूं। मैं ही शैव्या हूं । मैं ही पतुरिया हूं । पर मैं किसी की रक्षा नहीं कर सकता। शैव्या स्वयं रक्षा करे अपनी । पतुरिया स्वयं रक्षक है अपनी । स्वयं अपनी रक्षा करे हरिश्चन्द्र ।

विश्वामित्र : अपने अहंकार के लिए स्वयं अपने आप दूसरों को भी बेच देता है । फिर सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर ठोक देना ।

हरिश्चन्द्र : अंहकार की पहचान तर्क है । उसकी जड़ में भय है । अपूर्णता है । केवल कर्म आस्था का परिचय है ।

विश्वामित्र : वह कर्म जो स्वयं को, दूसरों को धर्मच्युत कर दे, कहां की आस्था है ?

हरिश्चन्द्र : स्वयं अपने धर्म की चिंता करो ऋषिराज ।

विश्वामित्र : मैं अटल हूं अपने धर्म पर ।

हरिश्चन्द्र : फिर दूसरों की चिंता क्यों !

रोहित : आपको सर्वस्व दान में मिल गया । दक्षिणा भी मिल गयी । अब हमारी चिंता क्यों !

विश्वामित्र : निर्मम पिता ने अपने अहंकार में पुत्र को अनाथ कर दिया ।

रोहित : आश्चर्य है ! अब यह चिंता तुम कर रहे हो !

नारद : हमारा धर्म ही है दूसरों की चिंता करना और अपनी सेवा करना ।
ब्राह्मण : भई, झगड़ा खत्म करो । रोहित को मैं खरीद लेता हूं । भाई, बोल क्या है तेरा मोल ?
शैव्या : यह अनमोल है । मेरा पुत्र है मेरे साथ रहेगा ।
पतुरिया : मेरे कोठे का पहरा देगा । इसे उचित वेतन मिलेगा ।
विश्वामित्र : नहीं, रोहित को मैं अपने साथ ले जाऊंगा । रोहित मेरी प्रजा है । जो शेष बचा है वह राज्य की सम्पत्ति है ।
ब्राह्मण : धर्मशास्त्र कहता है, जो शेष बचा है वह ब्राह्मण की सम्पत्ति है । इसे मैं ले जाऊंगा ।
नारद : क्या दोगे ? यह सबसे ज्यादा कीमती है !
ब्राह्मण : धन–दौलत मेरे लिए हाथ की मैल है। रोहित अब मेरी गैल है ।
नारद : काशी राज्य शिव का है ।
विश्वामित्र : पर यह अयोध्या की संतान है।
रोहित : मैं हूं हरिश्चन्द्र–पुत्र । जब प्रजा मैं शिव की हूं । तुम्हारी परीक्षा अब पूरी हुई ऋषिराज । जाओ, राज्य करो अयोध्या में ।
विश्वामित्र : मैं तुम्हें काशी में इस तरह स्वतन्त्र नहीं छोड़ सकता । हो सकता है, तुम मेरे विरूद्ध यहां षड्यन्त्र करो । पिता का प्रतिशोध लो मुझसे। अयोध्या का राज्य वापस लेने के लिए मुझपर आक्रमण करो ।
रोहित : क्या मैं ऐसा कर सकता हूं ?
हरिश्चन्द्र : तुम विश्वामित्र भी हो सकते हो !

(रोहित एकाएक पिता को देखता रह जाता है ।)

विश्वामित्र : मेरे पास इतना समय नहीं !
रोहित : तो मैं सत्य हरिश्चन्द्र भी हो सकता हूं !
हरिश्चन्द्र : सिर्फ कह देने से कुछ नहीं होता !
रोहित : क्या ? (देखता रह जाता है) कह देने से ही तो यहां सब कुछ हो गया !
हरिश्चन्द्र : एक स्वप्न से जागा हूं । जागते ही दिखाई पड़ा ! स्वप्न में 'मैं' ही भागीदार था और देखनेवाला भी मैं ही था । जब तक स्वप्न में था, देखने वाला गायब था । केवल भागीदार रह गया था । अब देखता हूं, केवल देखने वाला ही था ।
रोहित : मेरे लिए यह संसार स्वप्न नहीं ।
हरिश्चन्द्र : स्वप्न जैसा है । जिसे हमने 'मैं' जाना है, वह वास्तविक नहीं । इसे जो जान रहा है, वही है वास्तविक । सबको समान देखनेवाला ही सबसे मुक्त और सबसे अतीत है ।
रोहित : जो है, वही है ।
हरिश्चन्द्र : (बांहों में भर लेता है) हां, जो है वही है ।
रोहित : (साश्चर्य) पिताश्री !
हरिश्चन्द्र : जो है, वही है ।
विश्वामित्र : चलो, मुझे विलम्ब हो रहा है ।
रोहित : हे ईश्वर ! हे पिताश्री । हे जननी । जिसे सब कुछ दे दिया, उसे विश्वास भी दो ।
विश्वामित्र : मैं सर्वज्ञ विश्वामित्र हूं ।
रोहित : काश, तुम जान पाते मेरे परम पूज्य ऋषि । मैं स्वयं तुम्हारे धैर्य की अंतिम परीक्षा हूं । यहां जो कुछ भी भोग्य है, उसे देकर ही माता पिताश्री के साथ हम सबने भोगा है । पिता का निष्काम दान, हम सबका वही योग है। पहचानो मुझे, सर्वज्ञ विश्वामित्र ! मैं तुम्हारा द्रोही नहीं, तुम्हारा ही एक पुत्र हूं ।

विश्वामित्र : साधुवाद ! मैं अब प्रसन्न हूं, रोहित ।

हरिश्चन्द्र : परीक्षा, पर अभी शेष है ।

विश्वामित्र : जब यह पता है, तब भी परीक्षा क्यों ?

हरिश्चन्द्र : उसी लक्ष्य की ओर जाने के लिए ।

विश्वामित्र : वह लक्ष्य या तो निराकार है, शून्य है, अज्ञेय है या परम शक्तिशाली अजर–अमर होने का है ।

हरिश्चन्द्र : नहीं, वह लक्ष्य अपने से कहीं दूर नहीं है । वह हर क्षण है ।

विश्वामित्र : क्या है वह ?

हरिश्चन्द्र : जिसमें हम हैं, उसमें ही न रहने का अनुभव करते जाना, वही है ...

विश्वामित्र : कैसे ?

हरिश्चन्द्र : एक को प्राप्त कर उस ओर चलने का प्रयत्न करते ही अभ्यासी को दूसरा तत्व सहज ही प्राप्त होता है । ऋषिवर विश्वास करो, निश्चित हो जाओ, जहां तुम हमें छोड़कर जा रहे हो, वहीं से हमारा साथ प्रारम्भ हो रहा है । हम सब एक हैं साथ ।

विश्वामित्र : आह ! धन्य हो !

नारद : धन्य हो विश्वामित्र !

(सब गाते हैं)

इस माया जग में धन्य है ऐसे धर्मी इंसान को
इस धर्मी को जिसने दौलत धन को छोड़ा, छत्र व सिंहासन को
छोड़ा, दुनिया के दामन को छोड़ा, लेकिन नहीं सतपन को छोड़ा,
सर पर खेला संकट झेला, रक्खा है ईमान को, ईमान को ।

पांचवा दृश्य

(देवधर आते हैं ।)

देवधर : जीतन ! उधर अंधेरे में खड़े क्या देख रहे थे ? अब तक क्या देख रहे हो ? उधर अंधेरा है । अंधेरा देखने की चीज नहीं होती । मुझे देखो । मेरी तरह । अब तो नाटक खत्म हुआ ?

जीतन : पता नहीं ।

देवधर : अब तो तुम्हारा पार्ट खत्म हुआ न ? चलो मेरे साथ । लौका को खत्म करने का पूरा इंतजाम मैंने कर लिया है ।

जीतन : क्या ?

देवधर : एक दूसरी योजना बना ली है । इस बार हिन्दू–मुसलमानों में लड़ाई होगी । लौका उसमें भस्म होगा ।

जीतन : लौका के साथ जनता नहीं जलेगी ?

देवधर : अब आग लगती है तो कीड़े–पतंगे उसमें आकर खुद भस्म होते हैं । इसमें क्या दोष है आग का ? याद रखो, जब तक मेरे पास ताकत है तब तक मुझे कोई कुछ नहीं कह सकता । समरथ को नहिं दोष गोसाईं, रवि पावक सुरसरि की नाईं ।

जीतन : नाटक शुरू होने जा रहा है ।

देवधर : जब तक मैं नहीं चाहूंगा, मेरे इस इलाके में कहीं मक्खी नहीं भनक सकती ।

जीतन : लौका का जो नाटक शुरू हुआ है ...

देवधर : समझो खत्म हो चुका ।

जीतन : अभी तो नाटक शुरू हुआ है ।

देवधर : होने दो । तुम्हें तो दान–दक्षिणा मिल गई ।

जीतन : वही मैं देख रहा हूं ।

देवधर : वहां अंधकार में ?

जीतन : अंधकार में अंधकार ।

देवधर : फिर देखना क्या है ?

जीतन : अंधकार ।

देवधर : उसे देखने की क्या जरूरत ! आंखें बन्द कर लो, अंधेरा ही अंधेरा है ।

जीतन : आंखें खुली रहने से ही अंधेरा दिखता है । उसे आंख की रोशनी ही देख सकती है ।

देवधर : क्या ?

जीतन : मेरी आंखों में जो रोशनी है ; अंधेरा उसी से प्रकाशित हो रहा है । इसी का नाम सत्ता है । अंधे को अंधकार नहीं दिखाई पड़ सकता ?

देवधर : जीतन !

जीतन : अंधेरे के पीछे जो सत्ता है, वह प्रकाश की है । यह अनुभव मैंने विश्वामित्र बनकर किया। लौका जब डोम के हाथों बिक रहा था, तब मैंने उसकी आंखों में देखा ...

देवधर : लौका नहीं, राजा हरिश्चन्द्र बिक रहा था ।

जीतन : हम सब हरिश्चन्द्र हैं तुम्हारी सत्ताधारी राजनीति में । वहां राजा इन्द्र एक था, यहां राजा इन्द्र असंख्य हैं – पुलिस अफसर, नेता, पूंजीपति, दलाल, गुण्डा ... यही है तुम्हारी राजनीति ! वह अंधकार !

देवधर : चुप रहो । खिंचवा लूगा जबान ।

(चारों ओर से गांव के लोग घिर आते हैं । माई आती है)

देवधर : तुम सब के दिमाग ठीक करना, मेरी जिम्मेदारी है ।

जीतन : हां, हमने अपनी सारी जिम्मेदारी आपको दे दी थी । अब वही हम वापस लेना चाहते हैं ।

देवधर : हम माने तुम ? हम माने लौका ?

गांव के लोग : हम माने हम सब लोग ।

देवधर : हम माने 'मैं' ।

माई : क्या कहा ? फिर से तो कह रे ! देखूं तो, कैसी है तेरी जवान ! जानता है 'मैं' का मतलब ? उसका मतलब है जागना, और जो चारों तरफ है उसका गवाह बन जाना । आ, देख अंधेरा !

देवधर : यह अंधेरा नहीं रोशनी का अभाव है !

माई : रोशनी किसने बुझाई ?

देवधर : मैं नहीं जानता ।

माई : फिर क्या कहता है 'मैं'–'मैं' जैसे भेड़ें चिल्लाएं 'मैं' !

देवधर : चुप रह !

माई : अच्छा बोल ! क्या बोलता है ?

देवधर : (सहसा) देखो भाई, जैसा नाटक हो रहा था, होने दो । रंग में भंग मत करो । जनता नाटक देख रही थी । नाटक होने दो । यह जनता का नाटक है ।

जीतन : यह नाटक तुम्हारा बनाया हुआ है । सत्ताधारी राजा ने पंडित से कहा – धर्म का नाटक रचो । प्रजा सत्य की परीक्षा देती रहे । तुम बैठे मौज करो ! राजा ने अपने दरबारी पंडित से कहा – लिखो मेरी कहानी, वही हो गया इतिहास ! राजा ने आज्ञा दी, ऐसा शास्त्र रचो जिसमें नर्क और स्वर्ग हो, पाप और पुण्य हो, पूर्व जन्म का कर्म–फल हो भय, हो, आतंक हो, नीचा हो, ऊंचा हो ...

देवधर : यह लौका की जबान बोल रहा है ।

जीतन : मैं अब चुप नहीं रहूंगा ।

देवधर : यह अधर्मी है। धर्म के नाटक में विध्न डालता है, नाटक को पूरा नहीं होने देता। नाटक के अंत में हरिश्चन्द्र को स्वर्ग मिलेगा । स्वर्ग पाने के लिए अनेकों कष्ट सहने पड़ेंगे । यही तो बात है । यह कुछ समझता नहीं, और लोगों को समझने नहीं देता । सोचने की बात है, वर्तमान में बिना दुख झेले, बिना चरित्र की परीक्षा दिए सुन्दर भविष्य कहां से आएगा ! इस दरिद्र पृथ्वी पर स्वर्ग लाने के लिए प्रजा की तपस्या जरूरी है, (हंसना) नाटक के अंत में मेरा ही पार्ट है । मतलब मुझी से नाटक का अंत होगा । जनता मेरे पार्ट को देखना चाहती है । (अभिनय) धन्य हो हरिश्चन्द्र ! तुम सत्य की परीक्षा में विजयी हुए । बैठो पुष्पक विमान में । सीधे स्वर्ग जाओ । देवता प्रसन्न हैं । मैं अति प्रसन्न हुआ । हे नर श्रेष्ठ ! क्षमा हो, मुझे मोहवश भ्रम हो गया था कि तुम इन्द्रासन लेना चाहते हो ।

जीतन : पर इस नाटक का अंत नहीं है ।

(लोग हंस पड़ते हैं ।)

देवधर : तुम लोग नाटक के साथ मजाक करना चाहते हो ! परंपरा को जरा भी तोड़ा – मरोड़ा तो जेल की हवा खानी पड़ेगी ।

जीतन : तुम्हारी इसी राजनीति से लोगों को घृणा हो चुकी है ।

देवधर : राजनीति शक्ति है । यहां की प्रजा हमेशा शक्ति की पूजा करती चली आई है।

जीतन : प्रजा अब खुद शक्ति बन रही है । लोग जग रहे हैं ।

देवधर : कौन जमा रहा है उन्हें ?

गांव के लोग : हमारे दुख हमें जमा रहे हैं । तुम्हारे चरित्र हमें समझा रहे हैं ।

देवधर : बहकावे में मत आवो । तुम्हारे लिए हमेशा हमने लड़ाई की है ।

गांव के लोग : अब हम खुद अपनी लड़ाई लड़ना चाहते हैं ।

जीतन : सुनो सत्यनारायण की कथा !

देवधर : शक्ति हमेशा ऊपर के लोगों के हाथ रही है । नीचे का सारा रक्त युगों से ठंडा हो चुका है । तभी वहां भाग्य है, धर्म है, और न जाने कितनी–कितनी कथायें दबी हैं उस बर्फ की धरती में ।

जीतन : वह बर्फ पिघल रही है । चोटियां ढह रही हैं । अब तक मैं समझता था, जब तक राज्य है तब तक राजनीति रहेगी । पर अब पता चला, जब तक मनुष्य है –

छोटा–बड़ा, ऊंचा–नीचा, तब तक रहेगी यह राजनीति । जिस दिन एक असहाय ने घुटने टेककर आंखों में आंसू भरकर दृश्य से अदृश्य की ओर देखा, उसी दिन जन्म हुआ ईश्वर का, और वहीं से पनपी पहली राजनीति धर्म की । इसी में एक हुआ इन्द्र, बाकी सब हुए हरिश्चन्द्र ।

देवधर : यह क्या बकता है !

गपोले : देखो न, आप सोने को हाथ लगाते हो, मिट्टी क्यों हो जाती है ? आप बातें पक्की करते हो, पर कच्ची क्यों हो जाती है ?

देवधर : (क्रोध में) बदमाश ! विश्वासघाती ! मुझे यह पता नहीं था, कि तुम लोग मेरी ही आस्तीन के सांप बन जाओगे । पर मुझे तुम जैसे लोगों की कोई चिंता नहीं । चिंता है केवल उस लौका की, जिसके पास न धन है, न कोई साधन है, लोग उसके प्रभाव में क्यों हैं ?

जीतन : सुनो सत्यनारायण की कथा !

देवधर : लौका को बुलाओ । मैं उससे मिलना चाहता हूं ।

गपोले : हरिश्चन्द्र, शमशान पर मिलेगा । इन्द्र के भेष में जाइए ।

देवधर : सुनो ! सुनो ! जब तक हममें परीक्षा लेने की शक्ति है और जब तक तुम सबमें परीक्षा देते रहने का धैर्य है, हम रहेंगे । सदा रहेंगे । रूप बदलते रहेंगे । जीतन और लौका बनकर आयेंगे । बोलो, अब तुम लोग किधर हो ?

जीतन : तुम किधर हो ?

देवधर : इधर या उधर होना तुम्हारी किस्मत है । मैं हूं बस । लोग होते हैं । मैं हूं ।

गांव के लोग : सुनो सत्यनारायण की कथा !

छठा दृश्य

(लोग गाते हैं ।)

रंगा : अब तुम नहीं चढ़े रह सकते पीठ पर हमारी,
बोझा तुम्हारा ढोकर, मन में आग जगती है ।
जभी तुम्हारा चेहरा होता है जब अपने सामने,
देख उसे अब हमको, गहरी चोट लगती है ।
गहरी चोट लगती है ।।

गांव के लोग : जभी तुम्हारा चेहरा होता है जब अपने सामने
देख उसे अब हमको गहरी चोट लगती है ।
गहरी चोट लगती है ।।

रंगा : तुम समाज के उजले आंगन में हो अंध अंधेरे,
हम सूरज के संगी–साथी, तुम्हें जलायेंगे ।
मंजिल है पांवों के नीचे, प्राणों में तूफान,
हमने तय कर लिया, कि हम परिवर्तन लायेंगे
हम परिवर्तन लायेंगे ।।

गांव के लोग : मंजिल है पांवों के नीचे, प्राणों में तूफान,
हमने तय कर लिया, कि हम परिवर्तन लायेंगे ।
हम परिवर्तन लायेंगे ।।

रंगा : पैदा होने पर तो, कोमल होता है हर चेहरा,
लेकिन मरने के करीब, वह पत्थर हो जाता है ।
कोमलता–निर्मलता ही है, जीवन की पहचान,
जड़ता औ पशुता को तो विध्वंस गाता है ।
विध्वंस गाता है ।।

गांव के लोग : कोमलता–निर्मलता ही है, जीवन की पहचान,
जड़ता औ पशुता को तो विध्वंस गाता है ।
विध्वंस गाता है ।।

रंगा : बिना सवारी के ही, पानी ने नापे रास्ते,
बस्ती से लेकर जंगल तक गाती है जलधार,
हर अभाव को सहकर भी, पानी ने खोजे रास्ते,
शीश उठाओ, आगे आओ, तुम हो पानीदार ।
तुम हो पानीदार ।।

गांव के लोग : हर अभाव को सहकर भी, पानी ने खोजे रास्ते,
शीश उठााओ, आगे आओ, तुम हो पानीदार ।
तुम हो पानीदार ।।

गपोले : अरे चौप्प करो, चौप्प । 'कीप कोयट' । मतलब अंगरेजी में चुप्प रहो । बताओ भला, कहां चल रहा था हरिश्चन्द्र नाटक, कहां खोल दिया दूसरा फाटक ! अब यहां से झटपट् हो रफूचक्कर, नाटक का अगला पर्दा उठ रहा है, धनचक्कर । कहां राम की रामायन, कहां चना चबायन ! देखिए न, अपने हरिश्चन्द्र को बेंच दिया डोम के हाथ, शैव्या महारानी को भेज दिया पतुरिया के साथ, और यहां आपस में फुटबाल का मैच खेल रहे हैं !

(रंगा गपोले को खींचकर ले जाता है ।)

रंगा : कीजे कृपा नारद मुनी यहां से चलिए जी
सत्यनारायण की कथा पर आगे बढ़िए जी ।

सातवां दृश्य

(पतुरिया का कोठा । लोग बैठे हैं । संगीत और नृत्य चल रहा है ।)

मेरे जीवन में लाल जड़े
बहुत खरे ओ महराज रे ।
कोऊ मूंगा कोऊ सोना कहत है
परखन वाले पर गाज पड़े –
बहुत खरे ओ महराज रे ।
कोऊ हीरा कोऊ लाल कहत है
चाखन वाले पर करम लड़े –
बहुत खरे ओ महराज रे ।

पहला : वाह दाताराम ! क्या बात है !

दूसरा : जैसा रूप वैसा ही कंठ !
तीसरा : साक्षात बम भोले से भेंट हो गई !
चौथा : पूरी काशी गमक रही है !
पांचवा : अरे वह नयी मूरत किधर है !
पहला : गुरू, हम तो घर मां भांग का रगड़ा लगावत रहे, अचानक मालिक पै नजर पड़ि गयी । तबसे आय गये इहां । वही मसल है–आके पिंजड़े में अब तो फंसापुराना चंडूल,
लगी मालिक की हवा दुम हिलाना गया भूल ।
पांचवां : फिर वही पचड़ा । चंडूल का दुखड़ा । वह नया माल किधर है ?

(पतुरिया फिर गाती हुई नाचने लगती है । बाईं तरफ अकेला रोहित दिखता है ।)

रोहित : (स्वगत) मैं क्या देखने बाहर निकला हूं ? क्या कहीं कुछ बदल गया ? बाहर क्या अपने आपको ही देखना होता है ? क्या मैं अब भी अपनी मां को देख सकता हूं ?

(बढ़ता है । कोठे की सीढ़ियों पर चुपचाप खड़ा हो जाता है । बाहर से वही भांगवाला आता है ।)

भांगवाला : अरे तू कौन है, बे !
रोहित : आप कौन हैं ?
भांगवाला : तू कहां से आ गया दाल–भात में मूसलचन्द, वह कहां है रानी हरिश्चन्द्र ?
रोहित : ऐ ! कायदे की बात करो !
भांगवाला : भाई, तुम जीते–हम हारे । माफ करो । अब आगे पैर बढ़ाऊ ?
रोहित : आप हैं कौन ? यहां क्या चाहिए ?
भांगवाला : मैं तो भाई, शून्य हूं । मुझे अब कुछ नहीं चाहिए । वह मेरे पेट में है । मगर वह जो आयी है नई बाई, उसे छैला ने बुलाई ।

(पतुरिया ताली बजाती है । भांगवाला बढ़ता है ।
भीतर से साज–श्रृंगार किए हुए शैव्य निकलती है ।)

पतुरिया : दर्शन कर लो दाताराम !
सब : जै हो ! जै हो शंकर भगवान की ! काट दे लहासी ।
बाबा विश्वनाथ काशी ।
भांगवाला : मैं चढ़ि जाऊं फांसी ।
पहला : फुलगेंदा की बगिया में जैसे सूरजमुखी ।
दूसरा : तारों के बीच में जैसे खड़ी हो चन्द्रमुखी ।
तीसरा : कहां भाई, मुझे तो कछु नहीं दीखै !
चौथा : अरे मेरी आंखों पर भी परदा पड़ गया ।
पांचवां : मेरे नयनों में जैसे जर्दा भर गया ।
भांगवाला : इतनी भी क्या चकाचौंध कि कुछ सूझे ही नहीं !
पहला : कुछ सुनायी भी नहीं देता ।
दूसरा : हे री सुन्दरी ! थोड़ा चलकर दिखाओ ना !

(शैव्या चलकर दिखाती है ।)

तीसरा : कुछ गाओ ।
चौथा : थोड़ा हंसकर फिर मुस्कराओ !

(शैव्या हंसती है ।)

सारे लोग : (परस्पर) अरे यह क्या ! कुछ नहीं । दिखता ही नहीं । सुनायी भी नहीं पड़ता । आश्चर्य है !

पहला : यह माल है या इन्द्रजाल है ?
दूसरा : यह सब इसीकी चाल है ।
तीसरा : पर भाई, क्या गजब का माल है !
चौथा : बिना देखे !
पांचवां : बिना सुने !
भांगवाला : जैसा हीरा–पन्ना–लाल है ।
शैव्या : क्या आज्ञा है स्वामिनी ?
पतुरिया : तुझे जाना है ।
भांगवाला : मेरे साथ ।
पतुरिया : पता है, तुझे वहां क्या करना है !
शैव्या : ग्राहक प्रेमी जो मांगेगा, भरसक उसे देने की कोशिश करूंगी ।
पतुरिया : पर तुम तो अपने आपको पतिव्रता नारी कहती हो ।
शैव्या : वही रहूंगी ।
पतुरिया : कैसे ?
शैव्या : अपने पुण्य से ।

(लोग हंसते हैं ।)

पतुरिया : याद रखना, प्रेमी ग्राहक को अगर कोई शिकायत हुई ...
शैव्या : भरसक सब कुछ करूंगी । फिर भी दंड से नहीं डरूंगी । मैं बिकी हूं आपके हाथों, जो कुछ होना है, होगा आपके हाथों ।
पतुरिया : सुन लो ! न बीच में कहीं से आये तुम्हारा धर्म ! वहां उसके पास न करना कोई शर्म !

(शैव्या भांगवाले के साथ चली जाती है। पतुरिया गाती हुई नृत्य करती है। छैला आता है बड़े आवेश में बड़बड़ा रहा है। रोहित उसे रोकता है।)

छैला : खबरदार ! अगर मेरे सामने आया तो होगा गुनहगार !
रोहित : यहां शोर मत कीजिए ।
छैला : जानता है, मैं कौन हूं ? डलवा दूंगा जिन्दा आग में !
रोहित : तो दंड लिक्खा है तेरे भाग में !

(दोनों में मल्ल युद्ध होने लगता है । शैव्या दौड़ी हुई आती है और रोहित की रक्षा करती है । महफिल से लोग भागते हैं ।)

पतुरिया : यह कैसा शोरगुल तकरार है ?
छैला : हटाओ इसे नजरों के सामने से, यह मक्कार है ।

(पतुरिया इशारा करती है । शैव्या सामने आती है ।)

छैला : यह क्या है, सुन्दरी या माया ? सारी रात इसने मुझे तड़पाया ।
पतुरिया : क्या हुआ ?
शैव्या : पता नहीं, इन्हें क्या हुआ ।
छैला : आह ! सुनता हूं पर सुना नहीं जाता । देखता हूं पर देखा नहीं जाता । कुछ कौंध जाता है मेरी आंखों में, यह क्या है, जो दस्तक देती है मेरी सांखों में ? सागर तट पर जैसे कोई मन्दिर हो और उसमें यह चिराग जैसी जल रही हो । मैं पतंगा हूं इस चिराग का । मैं चाहे जलकर भस्म हो जाऊं पर बुझाऊंगा इस चिराग को । मैं प्यासा सागर हूं । तुझे छककर पिऊंगा। धिक्कार है मेरे विलास को, यदि मैं इसे आंखों से पी न सका । मेरी सारी शक्ति जलते हुए रेत की ढूह है, यदि एक क्षण का भी सुख न मिला । यह क्या है, मैं इसे छू तक नहीं सकता । लगता है मैं अपनी परछाईं के पीछे दौड़ रहा हूं ।
शैव्या : मैं यहां हूं ।
पतुरिया : बिलकुल सामने खड़ी है । आपके कदमों में पड़ी है ।

छैला : झूठ है । बिलकुल झूठ । मैं खड़ा हूं अपने सामने । अब और अधिक अपने को सह नहीं सकता, जो है उसे किसी भी तरह कह नहीं सकता ।

पतुरिया : फिर से देखो, यह रूपवती कामिनी है ।

छैला : कामिनी नहीं, मायाबिनी है ।

रोहित : सावधान ! ये मेरी मां है । इसके चरित्र के विरूद्ध एक शब्द भी नहीं सुन सकता ।

छैला : पतुरिया–दासी का चरित्र ! हा हा हा !

शैव्या : रोहित, तू यहां से चला जा !

छैला : दूर करो इसे मेरी आंखों के सामने से । किया है अपमान मेरे विलास का । मुझे चाहिए विलासिनी, नहीं चाहिए यह संन्यासिनी ।

पतुरिया : हाय यह क्या किया !

शैव्या : जो कहा, मैंने किया । पर खुद इन्हें न जाने क्या हो गया । मैं क्या कहूं, क्या हो गया ।

छैला : खींच लो इसकी जबान !

रोहित : सावधान !

छैला : फोड़ दो इसकी आंखें !

रोहित : बस–बस, भाग जाओ अगर जान प्यारी है !
सह नहीं सकता अब और मां ही प्राणप्यारी है ।

शैव्या : रोहित, तू यहां से चला जा !

रोहित : इस पतित–विलासी के आगे से ! नहीं मां ।

छैला : चुप रह वाचाल, मैं हूं तेरा काल !

(छुरा निकाल लेता है ।)

रोहित : कायर, मत बजा गाल ।

शैव्या : रोहित ! नहीं–नहीं !

छैला : पतुरिया के हाथों बिककर यह सती नहीं रह सकती ।

रोहित : जब तक कहीं एक पूत भी जिंदा है, मां का सतीत्व अमर है ।

पतुरिया : चुप रह नादान !

छैला : हमेशा के लिए मैं चुप करूंगा इसे ।

शैव्या : नहीं–नहीं । जो दंड देना हो मुझे दो । मेरा लाल निर्दोष है । लो, मुझे खत्म कर दो ...

रोहित : नहीं, मां का अपमान ही मेरे सामने ! धिक्कार है मेरे जीवन को ।

पतुरिया : अब तू यहां नहीं रह सकता ।

रोहित : मैं हूं, रहूंगा, जब तक मेरी करनी है ।
सब कुछ वहां है जहां मेरी जननी है ।

छैला : हा–हा–हा ! अब यह किसी की नहीं, केवल हमारी है, पाकर रहूंगा, इसके रूप की बलिहारी है । भींच ले अपना गला, तोड़ ले अपनी सांसें, भाग जा यहां से या फोड़ ले अपनी आंखें ।

पतुरिया : चला जा यहां से । इसी दम निकल जा !

शैव्या : (पतुरिया के सामने हाथ जोड़े) मैं बिकी हूं, जो कुछ चाहो करो मेरा । मेरा पूत निर्दोष है ।

रोहित : जानता हूं सारा रहस्य बहुत गहरे से ।

छैला : नफरत मुझे है तेरे चेहरे से ।

(छैला रोहित की हत्या करता है ।)

रंगा : हत्या करके चल दिया छैला चतुर सुजान ।

मूर्छित हो रानी गिरी, देख पूत बेजान ।

शैव्या : नैना खोल–खोल–खोल
मेरे कुंवर कन्हाई ।
आंखें खोल मुख से बोल
पूछे तेरी माई । नैना खोल ...

रंगा : झकझोरे पुचकार कर, रानी बारम्बार
रोहित जब बोले नहीं रोवे हिचकी मार ।
मुर्छा जागी कुंवर की जननी निरख उदास
अंतिम समय निहार के समझावे रोहितास ।

रोहित : विलास के हाथों बिका हुआ वह मनुष्य नहीं काला सर्प था । जैसे छुआ उसने, मुझमें विष फैल गया उसके जहर का । मैं जाता हूं, पर रहूंगा तुम्हारी सांसों में। देखूंगा, क्या अंत होता है देवताओं के दर्प का । पिता से कहना, रोहित सुरपुर नहीं गया । स्वर्ग वह झूठा है । यहीं कहीं माटी में छिप गया, जिसे लोगों ने फूंकाऔर लूटा है ।

रंगा : कहते कहते कुंवर की हो गयी बन्द जबान
प्राण तुरन्त रोहितास के करते भये पयान ।

शैव्या : ऐसी विपदा में चला छोड़ बिलखती मोय
तेरे बिछुरन से कुंवर मातु कहां अब होय ।
गोद खाली मेरी आज करके चला, किस तरह मैं करूं अपने दिल में सबर !
ऐसी करनी क्या खोटी थी मुझसे हुई, छीना ऐसी जगह जो हमारा कुंवर !

रंगा : गिरी लाश पर जिस घड़ी रानी बेसुधमार
विप्र भेष धरकर मुनी बोले गिरा उचार ।

विश्वामित्र : प्राण पखेरू उड़ गये खाली पड़ा शरीर
अरी बावली किसलिए रोती हो दिलगीर !
क्यों देर करती तू भला माटी बिगाड़े बावली !
जो बोलता था चल बसा किसको पुकारे बावली !
बंधन में आवागमन के सब बंध रहा संसार है ।
सब रोना धोना पीटना अब सब तेरा बेकार है ।

रंगा : रानी को समुझाय कर मुनी ने पकड़ी राह
मां को पर धीरज कहां रोई करके आह !

शैव्या : निठुराई कर मातु से, लिया है मुख को मोड़
दगा लाल करके चला एकदम नाता तोड़ ।
एक पतुरिया के घर में हूं दासी बनी
बस यही सोच अब तक न मन से गया
देखकर तुझको जीती थी ऐ लाड़ले
आज उठ हाय तू भी चमन से गया ।
सेवा करने का तूने वचन था दिया
हा, पलट फिर भी तू उस वचन से गया ।
गति क्रिया तेरी कैसे करूं लाड़ले
खर्च करने को है पास धन भी नहीं ।
चक्रवर्ती के सुत हो मगर आज दिन
तन ढकन को तुम्हारे कफन भी नहीं ।

रंगा : छाती करके वज्र की रानी धीरज धार
कफन उढ़ायो लाल को अपनी सारी फार ।

शैव्या : जनमत जाके रतन धन, बांटो मोतिन हार

आज उसी को हो रहा, कफन मिलन दुशवार ।
उंगली छुआई आज तक जिसके कभी नहीं अंग में
कर वज्र की छाती बहाने जाऊं उसको गंग में ।
मैंने तुझे छोड़ा नहीं तूने मुझे है तज दिया
मालूम नहीं किस जन्म का बदला है बन बेटा लिया ।

रंगा : रानी शैव्या के रूदन को जब हरिश्चन्द्र ने सुना
पहचान सुत की लाश को भूपति का भी धीरज छुटा ।
उस वक्त भी हरिश्चन्द के आंसू भी आये हैं निकल
लेकिन समझ कर्तव्य अपना नृप गये फौरन संभल ।

हरिश्चन्द्र : ऐ स्त्री ! सुन मेरी बात । रोने–धोने से तेरे नहीं जी उठे कुमार । आये तुझे देरी भई अब तक नहीं है कर दिया । मरघट का कर जल्दी अदा कर ! क्यों रही देरी लगा ? बस–बस देखती क्या है, पहले मेरा कर दे चुका ।

शैव्या : हाय ! किससे कर हो मांगते स्वामी करो विचार ! यह सुत रोहित आपका मैं अर्धांगिनी नार । है लाश बेटे की वहां रक्खी जाओ नेक निहार लो । अंतिम समय सूरत निरख मुख चूमकर पुचकार लो । बेटा तुम्हारा और कर मुझसे मांगते हो पिया !

हरिश्चन्द्र : जब तक मैं राजा था अवधपुरी का, तब तक तू रानी थी और सुत था प्राण समान । पर अब मैं खड़ा हूं मरघट के मैदान । यह सुत नहीं मेरा ना इसका मैं पिता । ना नारि तू मेरी रही । बिकते अलग सब हो गये बातें गई संबंध की । सब बिके, बिकते रहे, थी यही उसकी माया । जो बिक गया बाजार में है अब कहां उसमें दया । तुम करो उसकी क्रिया यह तुम्हारा काम है । मरघट का हूं गुलाम मैं शव से भी कर लेना मेरा काम है ।

शैव्या : कर देने को जो टका होता मेरे तीर। कफन उढ़ाती किसलिए साड़ी अपनी चीर।
मैं भी बिकी हूं सुनो ऐ पिया । जो बिकी थी उसी ने यह सब कुछ किया ।
बेचकर हमने अपने ये ढाया सितम । गंग में फूल सुत का बहा लेने दो, हाल ये मेरे इतना ही करिए करम !

हरिश्चन्द्र : तब तलक कर वसूली पायें न हम, गतिक्रिया इसकी करने न देंगे तुझे । राज धनधाम जिसके लिए तज दिया, सो टके पर डिगाना न होगा धरम । सब सुयश पुण्य होता मेरा नष्ट है, अपने मरघट नियम को जो तोडूं जरा ।

शैव्या : आधी साड़ी तो सुत के कफन में लगी आधी साड़ी से अपना ढके हूं बदन ।
जिससे कट जाये दोनों की विपदा पुरूष आप ही दें बता अब करूं क्या जतन ?
फूल गंगा में बह जाये मेरे प्रभु, हो पड़े आपका भी न झूठा परन ।

हरिश्चन्द्र : कर के बदले में साड़ी मुझे फार दे, बस बचा है मेरे पास एकी जतन । देखो किसके बल से खड़ा है निराधार नीला गगन ।

रंगा : पुरूष बचन सुनके तिया खुल गये मन के द्वार
आधी की आधी दईं साड़ी रानी फार
बहायो गंग में रानी देय अशीश
छिपे देख यह सब रहे नारद, इन्द्र, मुनीश ।

(नारद, विश्वामित्र और इन्द्र का प्रवेश)

इन्द्र : धन्य हरिश्चन्द्र । पूरी हो गई परीक्षा । 'सत धरम में तू पूरा गया है उतर, तब तलक नभ धरा सूर्य औ चंद है, सत्यवादी रहे नाम तेरा अमर । स्वर्ग जाओ ...

हरिश्चन्द्र : नहीं चाहिए मुझे झूठा स्वर्ग । मैं मरूंगा इसी धरती पर सबके साथ । हर समय तूने हमें बेचा है झूठे शब्दों के बाजार में स्वर्ग की लालच दिखा के ।

देवधर : अरे–रे–रे ! यह कहां है नाटक में ?

हरिश्चन्द्र : यह नाटक तुम्हारा था जिसमें हरिश्चन्द्र को स्वर्ग भेजने का झूठा अभिनय किया गया था । यह है सत्यनारायण की कथा, जहां हरिश्चन्द्र सब कुछ भोगकर अपनी पृथ्वी पर खड़ा रहता है ।

देवधर : बंद करो बकवास ! सत्य की परीक्षा में सफल होकर हरिश्चन्द्र स्वर्ग गया । नाटक खत्म हुआ ।

लौका : सुनो हरिश्चन्द्र का संवाद । ना मैं अमर हूं, ना ही मैं स्वर्ग गया । जीवन भर नरक की आग में जलकर दी अपने चरित्र की परीक्षा । तुम कहते हो मैं सफल हो गया सत की परीक्षा में ! पर मुझे कल फिर परीक्षा देनी होगी अपने सत की। और आज का परीक्षाफल कल नहीं आयेगा काम । इसलिए मुझे यहीं रहना होगा कल की परीक्षा के लिए ।

देवधर : तेरी जबान खींच लूंगा । भोली भाली जनता को गुमराह करना चाहता है ।

लौका : जब तक स्वर्ग में इन्द्र है, हरिश्चन्द्र को यहीं पृथ्वी पर रहना होगा ।

देवधर : असली हरिश्चन्द्र स्वर्ग गया ।

लौका : जिस स्वर्ग में तुम्हारा इन्द्रासन है, वहां हरिश्चन्द्र का स्वर्ग नहीं है ।

देवधर : यह किसने कहा ? यह कहां है लिखा ?

लौका : अब तक सब कुछ इन्द्र ने कहा था, अब हरिश्चन्द्र कहता है – चलो इन्द्र, अब तुम दो अपने सत्य की परीक्षा ।

देवधर : ऐसा कह नहीं सकता वह हरिश्चन्द्र ।

लौका : हरिश्चन्द्र सदा अपने सत्य की परीक्षा देता रहे और तुम परीक्षा लेते रहो ! मैंने इस नाटक में राजा बनकर देख लिया ; जब तक तुम हो, हम केवल बनाये ही जा सकते हैं, अपने आप कुछ नहीं हो सकते । पर अब बनने और होने का मर्म हमें मिल गया । चुप रह जाना हमारा विरोध था । पर तुम उस भाषा को नहीं समझ सके । सत्ता है तुम्हारे पास, हम सब तुम्हारे हाथों के सिर्फ कठपुतले थे । यह सारा नाटक तुम्हारा रचा हुआ था और तुम्हीं इसके सूत्रधार थे । चलो । अब तुम्हें देनी होगी परीक्षा अपने सत्य की ।

(रोहित जीकर खड़ा हो जाता है ।)

रोहित : मैं अब तक मरा हुआ था, इसके लिये हुए जीवन से । आज मैं जी गया अपने जीवन से । सुनो, अब तक हम जी रहे थे तुम्हारे अनुभव से । अब हम जीयेंगे अपने अनुभव से ।

देवधर : सावधान ! यह धर्म का नाटक है । सत्य की मर्यादा में रहो, नहीं तो भस्म हो जाओगे । सीधे नर्क जाओगे ।

शैव्या : ये सारे शब्द तुम्हारे हैं । श्राप और भय तुम्हारी शक्ति है ।

जीतन : सारी कथायें तुमने बनाईं । और क्यों–कैसे बनाईं, विश्वामित्र बनकर देख लिया।

गपोले : ततो लीलावती कन्या कलावती । तुंगध्वजो राजा ।

रोहित : यह कथा झूठी है ।

लौका : चलो परीक्षा दो ।

जीतन : हम सब तुम्हारे साथ होंगे ।

गांव के लोग : अब कोई नया नहीं होगा इन्द्र, कोई नहीं होगा विश्वामित्र, सब होंगे हरिश्चन्द्र ।

लौका : पंचो ! यही है सत्यनारायण की कथा । अब आरती होगी ।

भारत जननि तेरी जय हो विजय हो ।
युग–युग से करते आए धर्म कथा कीर्तन
युग–युग से सुनते आए ऋषियों के प्रवचन
चिर रहस्य में डूबे धार्मिक उपदेशों के
किन्तु नहीं बदला है जन–गन का जीवन
सोचो, फिर कैसे यह जीवन अभय हो । भारत जननि0 ...
धर्म रहस्य है नहीं, धर्म है सजीवन

सत्य है वही जो जी सका यह जीवन
अन्न–धूप–माटी के पूत हम सनातन
नव विहान सब समान प्रान सब सदय हो । भारत जननि0 . . .

(पर्दा)

• • •